नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 2 • अंक 8
सितम्बर, 2000 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

वाजपेयी की अमेरिका-यात्रा : साम्राज्यवादी महाप्रभु के दरबार में "स्वदेशी" साष्टांग दण्डवत

उदारीकरण के दूसरे दौर के मुहिम को धुंआधार चलाने का वायदा और मेहनतकश जनता के लिए इसका मतलब

सम्पादकीय अग्रलेख

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी इन दिनों "महाबली" के दरबार में हाजिरी लगाने गये हुए हैं। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक उनकी अमेरिका यात्रा अभी जारी है।

छः माह पहले अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिण्टन की भारत यात्रा के बाद, वाजपेयी की अमेरिका-यात्रा से पहले और उसकेदौरान लिये गये फैसलों और दिये गये बयानों ने एक बार फिर साफ कर दिया है कि यह सरकार अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की प्रकिया को जल्दी से जल्दी निर्णायक मुकाम पर पहुंचा देना चाहती है। 'दूसरे दौर के उदारीकरण' के दौरान अब खासकर बिजली, दूरसंचार, यातायात-परिवहन आदि आधारभूत और अवरचनागत उद्योगों के दरवाजों को विदेशी मुनाफाखोरों के लिए पूरी तरह खुला किया जा रहा है।

प्रधानमंत्री वाजपेयी विदेशी पूंजी-निवेशकों के लिए कई बेशकीमती तोहफे लेकर अमेरिका गये हैं। उनकी अमेरिका यात्रा से ठीक पहले दूरसंचार के क्षेत्र में एक के बाद एक कई महत्वपूर्ण फैसले लिये गये। **सबसे पहले**, एस.टी.डी. सेवा (लंबी दूरी की टेलीफोन सेवा) में निजी कम्पनियों में प्रवेश के लिए रास्ता साफ कर दिया गया। लेकिन लाइसेंस सिर्फ ऐसी निजी कम्पनियों को ही दिये जायेंगे जिनकी साख ढाई हजार करोड़ रूपये की होगी जिसमें 49 प्रतिशत तक विदेशी पूंजी हो सकती है। साथ ही, उन्हे पहली बार एकमुश्त सौ करोड़ रूपये फीस और चार सौ करोड़ की बैंक गारण्टी भी देनी होगी। जाहिर है कि ऐसी शर्तो पर सिर्फ बड़ी कम्पनियां ही काम करने आयेंगी जिनकी प्राथमिकता आम उपभोक्ता नहीं बल्कि बड़े उद्योग और व्यापारिक संस्थान होंगे।

दूसरा महत्वपूर्ण फैसला था, दूरसंचार सेवा विभाग का निजीकरण। अब इस विभाग का काम एक नई कारपोरेट संस्था देखेगी जिसका नाम होगा – **भारत संचार निगम लिमिटेड**। इससे आगे चलकर दूरसंचार सेवा के पूरी तरह निजीकरण कर देने का रास्ता साफ हो गया।

दूरसंचार क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के खास उद्देश्य से सरकार ने **तीसरा महत्वपूर्ण कदम** यह उठाया कि इण्टरनेट सेवा प्रदाताओं (आई.एस.जी.) में आटोमेटिक रूट से सौ प्रतिशत एफ.डी.आई. की मंजूरी दे दी।

विदेशी पूंजी के लिए सबसे कीमती तोहफा सरकार का यह **चौथा महत्वपूर्ण निर्णय** था कि 1 अप्रैल, 2002 से विदेशी संचार कम्पनियों के लिए अन्तरराष्ट्रीय टेलीफोन कॉल का भारतीय बाजार खुल जायेगा। अभी इस क्षेत्र में विदेश संचार निगम लि.का एकाधिकार है। सरकार के वायदे के मुताबिक यह एकाधिकार सन 2004 तक चलना था, लेकिन अब इसे दो वर्ष पहले ही समाप्त करने का निर्णय लिया गया है।

> प्रधानमंत्री वाजपेयी की इस अमेरिका यात्रा ने भाजपा के "स्वदेशी" के नारे की कलई एक बार फिर एकदम खोलकर रख दी है और यह एकदम साफ कर दिया है कि यह सरकार हर हाल में, हर कीमत पर, जल्दी से जल्दी उदारीकरण मुहिम को उसके आखिरी मुकाम तक पहुंचा देना चाहती है।

एक के बाद एक, दूरसंचार के क्षेत्र में लिए गये इन फैसलों के पीछे सरकार का इरादा अपनी तत्परता का संदेश अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के कानों तक हर हालत में पहुंचा देना रहा है और इसमें वह सफल भी रही है। वाजपेयी की अमेरिका यात्रा के ठीक पहले, इन महत्वपूर्ण फैसलों के पीछे यही कारण रहा है।

❑

विगत 14 सितम्बर को भारतीय उद्योग महासंघ ने भारत में निवेश की इच्छुक अमेरिकी कम्पनियों के साथ वाजपेयी की एक बैठक आयोजित की। बैठक में वाजपेयी ने अमेरिकी निवेशकों का "जोशीला" आह्वान करते हुए कहा कि **वे अपने डालर तैयार रखें, भारतीय अर्थव्यवस्था दरवाजे खोले उनका इंतजार कर रही है। उन्होंने बताया कि उनकी सरकार चालू वित्त**

(पेज 12 पर जारी)

'योर ऑनर' हम अच्छी तरह जानते हैं फालतू कर्मचारियों की परिभाषा!

(कार्यालय प्रतिनिधि)

लखनऊ। क्या आप जानते हैं कि सुप्रीम कोर्ट ने पिछले जून महीने के अन्तिम सप्ताह में फालतू और संदिग्ध निष्ठा वाले कर्मचारियों को सरकारी सेवा से हटाने के लिए कानून बनाने की सलाह दे डाली है। सुप्रीम कोर्ट के माननीय न्यायधीश न्यायमूर्ति टी.थामस और न्यायमूर्ति एम.बी.शाह की खण्डपीठ ने एक मुकदमे पर फैसला सुनाते हुए इस आशय के विचार प्रकट किये थे। वैसे, जबसे निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू करने का दौर देश में शुरू हुआ है तभी से केन्द्र और राज्य की तमाम सरकारें विद्वान न्यायाधीशों की सलाहों का इन्तजार किये बिना ही अपने स्तर पर 'फालतू' कर्मचारियों को सेवामुक्त करती आ रही हैं। सुप्रीम कोर्ट के इस महत्वपूर्ण फैसले के बाद सरकारें अब अधिक नैतिक साहस के साथ फालतू कर्मचारी छांटो अभियान में जुट गयी हैं।

सुप्रीम कोर्ट की उपर्युक्त खण्डपीठ ने रमेशचन्द्र आचार्य बनाम उड़ीसा सरकार के मुकदमें में फैसला सुनाते हुए ये विचार प्रकट किये थे। रमेशचन्द्र आचार्य 1981 में मुंसिफ के पद पर बहाल हुए थे और फिर सिविल जज के रूप में उनकी पदोन्नति हुई थी। उड़ीसा सरकार ने 58 वर्ष की आयु में ही उनकी सेवाएं समाप्त कर दी थीं, जिसके खिलाफ रमेशचन्द्र आचार्य ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की थी।

रमेशचन्द्र आचार्य ने अपना कार्यकाल दो वर्ष और बढ़ाने के पक्ष

(पेज 10 पर जारी)

के पृष्ठों पर

लेनिन का महत्वपूर्ण लेख मजदूरों का समाजवाद क्या है	4
चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग - सात)	6
विशेष रिपोर्ट–तालरतोय और उसके मछुआरों की तबाही की कहानी (भाग-दो)	3
क्रांतिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस	11
बीमा निजीकरण औरट्रेडयूनियन की भूमिका: एक बहस	12
गुजरात के खेत-मजदूरों की कहानी	3

पडरौना में गन्ना किसानों-मजदूरों पर लाठियों-गोलियों की बरसात के बाद लाशों पर सियासत करने वाले चुनावी गिद्धों का जमावड़ा

अरविन्द सिंह

पूर्वांचल के किसानों-मजदूरों को चुनावी मसीहाओं की नहीं क्रान्तिकारी नेतृत्व की जरूरत

गोरखपुर। विगत 29 अगस्त को पडरौना चीनी मिल पर बकाये के भुगतान की मांग करने वाले गन्ना किसानों और मिल मजदूरों पर ताबड़तोड़ लाठियों-गोलियों की बौछार थमने भी न पायी थी कि लाशों पर सियासत करने वाले चुनावी गिद्धों के झुण्डों ने मंडराना शुरू कर दिया। ठीक उसी तरह, जिस तरह आज से आठ वर्षो पहले 9 सितम्बर 1992 को रामकोला गोलीकाण्ड के बाद चुनावी गिद्ध मंडराये थे। सोनिया गांधी, वी.पी. सिंह, देवगौड़ा जैसे चोटी के नेताओं से लेकर जनेश्वर मिश्र, रामशरण दास, अहमद हसन, रामनरेश यादव व सलमान खुर्शीद जैसे **अपनी-अपनी पार्टी के कद्दावर नेताओं ने पीड़ित** किसानों-मजदूरों पर घड़ियाली आंसुओं की बौछार करने और "न्याय दिलाने" के लिए संघर्ष का नगाड़ा बजाने की घोषणा करने में एक दूसरे से जमकर होड़ मचायी।

पडरौना गोलीकाण्ड ने एक बार फिर सिर्फ यही साबित किया है कि प्रदेश और केन्द्र की भाजपा सरकारें किसानों-मजदूरों के दमन-उत्पीड़न के मामले में अन्य सभी सरकारों को पीछे छोड़ चुकी हैं। लेकिन, गैर भाजपा विपक्षी चुनावी पार्टियों के बीच किसानों-मजदूरों के प्रति अचानक जाग उठा यह प्रेम उतना ही घिनौना और गन्दा है, जितना

(पृष्ठ 10 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान द्वारा आयोजित विचार गोष्ठी

जनसंघर्षों के परचम पर क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य का नारा जरूरी

वाराणसी, 3 सितम्बर (बिगुल संवाददाता) भूमण्डलीकरण की आर्थिक नीतियां विश्व पूंजीवाद के असाध्य संकटों की कोख से जन्मी है और विश्व पूंजीवादी तन्त्र की चौहद्दी के भीतर इन नीतियों का कोई विकल्प नहीं है। इन नीतियों की तबाही-बर्बादी से यदि मेहनतकश जनता को निजात दिलाना है तो इसके लिए बाजार और मुनाफे पर टिके समूचे अर्थतन्त्र को ही ध्वस्त करना होगा और देशी-विदेशी पूंजी की लूट से स्वतन्त्र एक नया वैकल्पिक अर्थतन्त्र निर्मित करना होगा।

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान द्वारा रविवार को रवीन्द्रपुरी स्थित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य शोध संस्थान में भूमण्डलीकरण की अर्थनीति-राजनीति और उसके विकल्प का सवाल विषयक गोष्ठी में अध्यक्ष पद से गोरखपुर से आये बिगुल मज़दूर दस्ता के श्री आदेश कुमार ने उक्त विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि भूमण्डलीकरण की अर्थनीति-राजनीति से तबाह बहुसंख्यक, मेहनतकश अवाम के सामने अब एक ही विकल्प बचा है क्रि वह आगे बढ़कर उत्पादन, राजकाज और समाज के समूचे ढांचे पर स्वयं कब्जा कर लेने की कठिन एवं लम्बी तैयारी में नये सिरे से जुट जायें।

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान के संयोजक श्री अरविन्द सिंह ने कहा कि देशी-विदेशी पूंजी के खुले गठबन्धन के मौजूदा दौर में स्वदेशी का नारा भ्रम पैदा करने और भटकाने वाला है। भूमण्डलीकरण की नीतियों के खिलाफ जनता के संघर्षों के परचम पर क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य का नारा अंकित होना चाहिए जिसका अर्थ है पूंजी की सत्ता का समूल नाश 'और सारी सत्ता मेहनतकशों' को। उन्होंने देश के राजनीतिक परिदृश्य की चर्चा करते हुए कहा कि किसी भी चुनावी राजनीतिक दल के पास भूमण्डलीकरण की नीतियों का कोई विकल्प नहीं है। मौजूदा संसदीय जनतन्त्र और उसकी राजनीति के दायरे के भीतर किसी विकल्प की तलाश करना अब बेमानी है, इसलिए अब क्रान्तिकारी विकल्प का निर्माण ही एकमात्र विकल्प है।

काशी विद्यापीठ में डिप्टी रजिस्ट्रार श्री **प्रभात रंजन** ने भी इस बात पर जोर दिया कि विकल्प संसदमार्गी राजनीति के दायरे के बाहर की राजनीतिक शक्तियां ही दे सकती हैं। इन शक्तियों की एकता को आज की एक फौरी जरूरत बताते हुए उन्होंने इस बात का रेखांकित किया कि यह एकता सैद्धान्तिक और रणनीतिक स्तर पर होनी चाहिए। सिर्फ भावात्मक एकता से काम नहीं चलेगा। **डा. आनन्द दीपायन** ने सैद्धान्तिक रणनीतिक मसलों पर एकता कायम करने के लिए बहस मुबाहसों के साथ-साथ भूमण्डलीकरण की नीतियों से प्रभावित किसानों, मज़दूरों, छात्रों, नौजवानों के संघर्षों में व्यावहारिक एकता कायम करने पर जोर दिया। श्री प्रशान्त हालदार ने कहा कि भूमण्डलीकरण की नीतियों के खिलाफ संघर्ष में स्वदेशी की मानसिकता की अनदेखी नहीं की जा सकती।

बिगुल मज़दूर दस्ता के श्री घनश्याम ने कहा कि देश की तमाम जनतांत्रिक संस्थाओं पर संसद, विधानसभाओं की तरह समाज के लुटेरे शोषक वर्गों का कब्जा है। उन्होंने इसके विकल्प के रूप में गांव-गांव, टोलों, मुहल्लों में मज़दूरों-किसानों और छात्रों-नौजवानों की लोक स्वराज्य पंचायतें गठित करने का आह्वान किया। विचार गोष्ठी में सर्वश्री **प्रदीप कुमार, डाक्टर अशोक, नरेश, चौधरी राजेन्द सिंह**, बैंक ट्रेडयूनियन कर्मी **राजीव तिवारी** ने भी अपने विचार व्यक्त किये। विषय प्रवर्तन **दिशा छात्र संगठन** के **ओम प्रकाश सिंह** और संचालन **कृष्ण गोविन्द सिंह** ने किया।

कविता

वह धरती से आतंकित हो गया

– वरवर राव

धमकी पर धमकी देते हुए
डर पर डर फैलाए
वह खुद डर गया
वह निवास स्थान से डर गया
वह पानी से डर गया
वह स्कूलों से डर गया
वह हवा से डर गया
आज़ादी को उसने बेड़ियां पहना दीं
मगर हथकड़ियां खनकी
वह उस आवाज से डर गया।

ए.एस.पी. कारखाना मज़दूर आन्दोलन

मज़दूरों ने दिखायी संग्रामी एकजुटता

(बिगुल संवाददाता)

गज़रौला (ज्योतिबा फूले नगर) 14 सितम्बर। ए.एस.पी. कारखाना मज़दूर आन्दोलन के पक्ष में सैकड़ों की तादाद में स्थानीय मज़दूरों ने ऐतिहासिक जुलूस निकालकर न केवल माफिया कारखानेदारों के खिलाफ अपनी संग्रामी एकजुटता का प्रदर्शन किया, बल्कि बहरे प्रशासन व उपश्रमायुक्त को भी अपनी ताकत का अहसास करा दिया। मज़दूरों द्वारा लगाये गये क्रान्तिकारी नारों से पूरा क्षेत्र गुंजायमान हो गया। यह प्रदर्शन, इलाके के तमाम कारखाने के मज़दूरों की जुझारू एकता के तौर पर बने **'संयुक्त मज़दूर संघर्ष समिति'** के बैनर तले किया गया। ए.एस.पी. के आन्दोलनरत मज़दूरों के साथ अन्य कारखाने के मज़दूरों ने व्यापक एकता कायम करके दमनकारी मालिकों को चेता दिया कि जोरो-जुल्म से उनकी आवाज दबाई नहीं जा सकती।

उल्लेखनीय है कि विगत 5 अप्रैल को मज़दूरों द्वारा त्रिवर्षीय वेतन समझौता सम्बन्धी मांगपत्र दिये जाने के बाद से ही प्रबन्धकों ने श्रमिकों को बाहरी हथियारबंद गुंडों से आतंकित कराने, स्थायी-अस्थायी मज़दूरों के बीच तफरका पैदा कराने की नापाक कोशिशों के बावजूद मज़दूर अपनी एकता बरकरार रखते हुए संघर्ष की राह पर चल रहे हैं। इधर कारखाना मज़दूरों की व्यापक एकता से बौखलाये प्रबन्धकों ने 16 अगस्त को अचानक पुलिस के बल पर कारखाने में कार्यरत मज़दूरों को बाहर कर दिया गया। तबसे ए.एस.पी. मज़दूर बाहर रहकर ही आन्दोलनरत हैं। प्रबन्धकों ने कारखाना परिसर से एक किलोमीटर दायरे में धरना-प्रदर्शन के खिलाफ न्यायालय से स्थगनादेश (स्टे) भी ले लिया है। मालिक मज़दूरों को डराने-धमकाने, फर्जी मुकदमों में फंसाने की कुत्सित साजिशों के पुराने हथकण्डों को भी आजमा रहे हैं।

उधर ए.एस.पी. श्रमिकों ने ठेका-कैजुअल-स्थायी मज़दूरों का भेद मिटाकर अपनी महत्वपूर्ण एकता बरकरार रखी है। साथ ही क्षेत्र के अन्य कारखानो के मज़दूरों और स्थानीय किसानों व आम नागरिकों के बीच भी एकता कायम कर ली है। **'संयुक्त मज़दूर संघर्ष समिति'** का गठन इसी प्रयास का फल है। इस आन्दोलन की गर्मी से गज़रौला के तमाम कारखाानों में मज़दूर संगठनों के बनने की प्रक्रिया तेज हो गयी और कई कारखानों में यूनियनों का गठन भी हो गया, जो एक महत्वपूर्ण बात है।

2 सितम्बर को तमाम कारखाने के मज़दूरों ने सैकड़ों की तादाद में उपश्रमायुक्त, मुरादाबाद का दो घंटे तक घिराव और जबर्दस्त प्रदर्शन किया। मज़दूरों की मांग थी – जुलाई माह के वेतन का तत्काल भुगतान, कारखाने के भीतर से असामाजिक तत्वों को तत्काल बाहर करने और त्रिवर्षीय वेतन समझौता तत्काल करवाकर औद्योगिक शान्ति की बहाली।

इस प्रदर्शन में ए.एस.पी. के मज़दूरों के साथ ही गज़रौला क्षेत्र के **सी.एन. सी.लि., इन्सिलको लि., रोनक आटोमोटिव लि., रतन वनस्पति लि.** और **श्री एसिल लि.** के मज़दूरों ने जबर्दस्त शिरकत करके अपनी वर्गीय एकजुटता प्रदर्शित की। इस एकजुटता से कारखानेदारों की नींद हराम हो गयी है, उनके चैम्बर सक्रिय हो गये हैं और आन्दोलन तोड़ने की कुत्सित साजिशों का जोर बढ़ गया है। उपश्रमायुक्त की मौजूदगी में सम्पन्न चैम्बर की बैठक में औद्योगिक अशान्ति के लिये मुख्य जिम्मेदारी मज़दूरों पर ही थोपी गयी।

यह सर्वविदित है कि यहां सभी कारखानों में श्रम कानूनों की खुली धज्जी उड़ाई जाती है, ठेका मजक्दूरों से 12-14 घंटे हाड़तोड़ मेहनत करवाने के बावजूद न्यूनतम वेतन तक नहीं दिया जाता है।

बहरहाल, क्षेत्र के स्थायी-अस्थायी मज़दूरों में संग्रामी एकता और सहयोग कायम है। आर्थिक संकट से जूझ रहे ए.एस.पी. के मज़दूरों के लिये इन्सिलको लि., सिवालिक लि. व रोनक आटोमोटिव के मज़दूर साथियों ने आर्थिक सहयोग एकत्रित करके दिया है और अन्य कारखानों में भी यह प्रक्रिया जारीं है। इस व्यापक मज़दूर एकता से निश्चित ही क्षेत्र के मज़दूरों का मनोबल बढ़ा है और संघर्ष की धार में भी तीखापन आया है।

यहीं मज़दूर साथियों के लिये यह गौरतलब बात है कि आज पूरी दुनिया व देश के पैमाने पर पूंजीवादी लुटेरों ने मेहनतकश अवाम पर जबर्दस्त हमला बोल रखा है। मज़दूर विरोधी नये श्रम कानून बन और लागू हो रहे हैं। निजीकरण-उदारीकरण, छंटनी-तालाबन्दी का जोर बढ़ता जा रहा है। कोर्ट-कचहरी, पुलिस-प्रशासन, श्रम विभाग सभी खुलकर पूंजीपतियों के पक्ष में खड़े हो गये हैं। ऐसे में श्रमिक वर्ग को अपनी हर छोटी-बड़ी लड़ाई बहुत सूझ-वृझ और कुशल रणनीति के साथ लड़नी पड़ेगी। अपने आर्थिक संघर्षों के साथ ही अपनी पूरी मुक्ति के संघर्षों में भी नयी क्रान्तिकारी धार पैदा करनी होगी।

रुद्रपुर (ऊधम सिंह नगर)। क्षेत्र के महत्वपूर्ण कारखाने **आनन्द निशिकावा लि.** में भी त्रिवर्षीय वेतन समझौते में प्रबन्धकों द्वारा टालमटोल से स्थिति तनावपूर्ण है। द्विपक्षीय व त्रिपक्षीय वार्ताओं के कई असफल दौर बीत चुके हैं। श्रम विभाग व जिला प्रशासन चुप्पी साधे हुए है जिससे मज़दूरों में आक्रोश बढ़ता जा रहा है। स्थिति किसी भी वक्त विस्फोटक हो सकती है। यहां के स्थायी-अस्थायी सभी मज़दूरों को आपसी भेदभाव मिटाकर अपनी एकजुटता बनानी होगी। उन्हें एक कुशल रणनीति के तहत अपने संघर्षों को नया आयाम देना होगा।

इधर क्षेत्र के एक दूसरे महत्वपूर्ण कारखाने होण्डा पावर प्रोडक्ट्स लि. में प्रबन्धकों ने एक कुत्सित रणनीति के तहत यहां के मज़दूर यूनियन श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन के अध्यक्ष आर. एस.रावत व एक अन्य मज़दूर कठैत को पहले निलम्बित किया फिर निष्कासन की कार्रवाई की गयी। इस मुद्दे पर कारखाने के सभी मज़दूरों के बीच भयंकर आक्रोश व्याप्त है। यहां के मज़दूर भी इस वक्त शान्तिपूर्ण संघर्ष कर रहे हैं।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों का नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भृजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

♦ शहीद पुस्तकालय, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर, मऊ** ♦ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, **मऊ** ♦ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** ♦ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ♦ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर ♦ जनचेतना डी.68, निराला नगर **लखनऊ** ♦ ओमप्रकाश, 69, बाबा का पुरवा (पुराना), पेपर मिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ♦ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से8·30) ♦ राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, **लखनऊ** ♦ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** ♦ विजय कुमार, 55/3, ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास कालोनी, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ♦ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ♦ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, **पन्तनगर** ♦ कृष्णगोविन्द सिंह, बी-18, बिड़ला छात्रावास, बी.एच.यू. **वाराणसी** ♦ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी** ♦ राजीव वर्मा द्वारा डा. जे.पी. वर्मा, बी.पी. 82, पटेलनगर, **मुगलसराय**, वाराणसी ♦ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र ♦ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, **दिल्ली** ♦ ललित सती, भारतीय जीवन बीमा निगम, करोलबाग, **नई दिल्ली** ♦ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केंद्र, विकास भवन, न्यू कलक्ट्रेट, **गाजियाबाद** ♦ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, **बोकारो** ♦ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, **बेगूसराय** ♦ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ♦ समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** ♦ विकल्प सांस्कृतिक मोर्चा, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, नेपियर टाउन, **जबलपुर** ♦ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. **सन्तनगर**, जिला-सिरसा ♦ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, **सिलीगुड़ी**, **दार्जीलिंग** ♦ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ♦ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया

नेपाल ♦ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल

विशेष रिपोर्ट

फतहपुर तालरतोय और उसके मछुआरों की तबाही की कहानी

दूसरी किश्त

बिगुल सर्वेक्षण टीम

शासन की नीतियों से ताल भी सड़ रहा, बांझ बन रहा

शासन की नीतियों की बदौलत तालरतोय के अस्तित्व पर भी संकट गहराता जा रहा है। एक समय हजारों मछुआरों की जिन्दगी का बोझ आराम से उठा लेने वाला ताल आज खुद बीमार हो चुका है। इसकी बर्बादी भी एक करुण कहानी है।

जैसा कि बताया जा चुका है कि तालरतोय अपनी लम्बाई के दोनों छोरों से अलग-अलग नालों द्वारा इसके समानान्तर बह रही सरयू नदी से जुड़ा हुआ है। इन नालों में प्रमुख है-हाहा नाला, जो ताल से निकलकर सोनाडीह गांव (निकटवर्ती बलिया जिले में स्थित) के पास सरयू नदी से मिलता है। इसी नाले के द्वारा बरसात के बाद ताल का फाजिल पानी सरयू में गिर जाता था और नदी का जलस्तर ऊपर होने के कारण पानी इस रास्ते से आकर ताल के जलभराव क्षेत्र को बढ़ा देता था। लेकिन कभी-कभी नदी से ज्यादा पानी आ जाने के कारण नाले और ताल के आसपास बाढ़ जैसी हालत हो जाती थी। इस समस्या से निपटने के नाम पर आज से लगभग छब्बीस-सत्ताइस साल पहले (1972-73 में) बलिया जिले के प्रशासन ने हाहा नाला और नदी के मेल वाली जगह पर एक ठोकर (रेगुलेटर) लगवा दिया। लेकिन समस्या का समाधान खुद एक समस्या बन गया। हुआ यह कि रेगुलेटर लगने के बाद से सिंचाई विभाग द्वारा उसे साल में कुछ निश्चित तारीखों को ही खोला और बन्द किया जाता था। लेकिन सही समय पर रेगुलेटर को न खोले जाने से (यानी ताल से नदी और नदी से ताल के बीच तेज बहाव के समय रेगुलेटर न खोले जाने से) हुआ यह कि नदी द्वारा लायी गयी मिट्टी नाले की तली और रेगुलेटर के आगे नाले के मुहाने पर जमा हो गयी और ताल से पानी निकलना बन्द हो गया। नतीजा यह हुआ कि ताल के पेटे में आने वाली सैकड़ों हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि पिछले बीस-बाइस सालों से जलमग्न है। पहले गर्मी के दिनों में ताल का पेटा सिकुड़कर एक-डेढ़ वर्ग किलोमीटर के दायरे में सिमट जाता था और केवल बरसात के दिनों में यह पूरी तरह भरकर फैल जाता है। आज बारहो महीने 20-25 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में पानी भरा रहता। इससे अब बोरो धान भी नहीं पैदा होता और ऊपर वाली जमीन पर भी खेती नहीं हो पाती।

इसके साथ ही ताल का प्राकृतिक सन्तुलन भी गड़बड़ा गया। पहले ताल के भरने और खाली होने की कुदरती प्रक्रिया के कारण हर साल नदी से मछलियों के नये-नये बीज और जीव-जन्तु ताल के पानी में आ जाते थे और ताल के अन्दर उग आयी खरपतबार, काई, शैवाल आदि का नाश हो जाता था। ताल में भिन्न-भिन्न जातियों की अनेक छोटी-बड़ी मछलियों की बहुतायत थी। रोहू और भाकुर आदि बड़ी मछलियां भी खूब पायी जाती थी। ताल में दूर-देश साइबेरिया से चलकर कई तरह की चिड़ियां भी आती थीं। लेकिन, आज ताल से जल निकासी न होने से कई तरह के सेवार (शैवाल), चौंड़ा, बेहया, कई तरह के खर-पतवार से ताल भर गया है। हालत यह है कि पूरे ताल के पानी का दो तिहाई से अधिक हिस्सा भूरे रंग के सेवार से ढंका दिखायी देता है। सड़ांध के चलते पानी में भयंकर प्रदूषण पैदा हो गया है। मछलियों के कुछ वेरायटी के बीज आते भी हैं तो वे भी प्रदूषण के चलते या तो नष्ट हो जाते हैं या रोगियल बन जाते हैं।

ताल की बर्बादी से मछुआरे तबाह होते गये

ताल रतोय की इस बर्बादी का असर मछुआरों की जिन्दगी पर पड़ना ही था। ताल का पानी प्रदूषित हो जाने से बड़ी मछलियों की कई प्रजाजियां तो पूरी तरह समाप्त हो गयी हैं-जैसे छोटी मछलियों में सुहिया, बैकरी, ढलई, दरही, हुड़रा और बड़ी मछलियों में धुत्ती, प्यासी, टेंगर, हिल्सा आदि। कारण कि ये मछलियां सिर्फ साफ पानी में ही रह सकती हैं। पहले मछुआरे आषाढ़ से लेकर जेठ तक मछलियां मारते थे। यहां तक कि गर्मियों में ताल जव सूखता था तव भी वे कई तरह की छोटी मछलियां मारते थे। समय-समय पर चिड़ियों का शिकार करके भी कुछ कमाई कर लेते थे। लेकिन आज की स्थिति यह है कि कायदे से चार या पांच महीने ही मछुआरों की कमाई हो पाती है। इतने ही समय में मछलियां लगभग समाप्त हो जाती हैं। बाकी सात-आठ महीने वे उच्छिष्ट मछलियों की बिनियां ही करते हैं।

आज स्थिति यह हो चुकी है कि बहुत से मछुआरे अपनी आजीविका कमाने के लिए भाग-भाग कर बम्बई, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा आदि जगहों पर जा चुके हैं। लेकिन इसके बावजूद आज भी ताल में मछली पर टिकने वाले मछुआरों की संख्या 1000 के आसपास है।

ये मछुआरे करीब-करीब सभी भूमिहीन हैं। उनके घर की महिलाएं सौ फीसदी मजदूर हैं। अगर वे मजदूरी न करें तो सिर्फ मछली के धंधे से पेट भी नहीं भर सकता। मछुआरों के नाम पर भूले-भटके कभी कोई सरकारी सुविधा आती भी है तो उसे मछुआरे नहीं पाते। उसे मल्लाह (जो मछली का पेशा नहीं करते, जाति से मल्लाह हैं और जिनकी आर्थिक-सामाजिक स्थिति अच्छी होने के कारण मछुआरों पर दबंगई गांठते हैं) हड़प लेते हैं। ये इसलिए सफल हो पाते हैं, क्योंकि अधिकांश मछुआरे अनपढ़ और आर्थिक-सामाजिक लिहाज से कमजोर हैं। ये मल्लाह सजातीय होने का फायदा उठाकर मछुआरों का अपने स्वार्थों के लिए इस्तेमाल करते हैं। मछुआरों की संख्या अधिक है इसलिए उनके बीच से उठे दलाल तरह तरह का झांसा देकर अपना उल्लू साधते हैं। कभी एक चुनावी पार्टी को वोट दिलवाकर, कभी दूसरी को, वे दलाली खाते रहते हैं। इन मछुआरों के वोट विधानसभा, लोकसभा चुनावों में अपने पक्ष में गिरवाने के लिए चुनावी पार्टियों के बीच छीना-झपटी चलती रहती है, क्योंकि ये जिसकी ओर एकवंड़ हो जाते हैं उसका पलड़ा भारी हो जाता है।

मछुआरों-गैर मछुआरों के बीच प्रमुख अन्तरविरोध

ताल रतोय में जलनिकासी की समस्या का कोई हल न निकलने के पीछे मछुआरों और गैर मछुआरों के बीच आपसी हितों का टकराव प्रमुख कारण बना हुआ है। गैर मछुआरों ने ताल के पानी की निकासी के लिए अपनी ओर से कोई ब्योंत नहीं उठा रखी है। आज भी गैर मछुआरे इसी बात का सपना देखते हैं कि किसी तरह जलभराव खतम हो और ऊपरी जमीन के अपने खेतों में वे पहले की तरह फसल उगा सकें। लेकिन अपने भारी नुकसान के बावजूद ताल के मछुआरे इस डर से पानी निकासी का विरोध करते चले आ रहे हैं कि पानी निकलने के बाद शिकारमाही वाली जमीन (गाटा संख्या 1623 और 5284) पर गैर मछुआरे कब्जा कर लेंगे। वे ताल का पानी केवल इस शर्त पर निकलने देने के लिए तैयार हैं, जब उनकी शिकारमाही की जमीन उनकी 242 किश्तियों पर मारुसी दर्ज कर दिया जाये।

यहां एक और अन्तरविरोध भी मौजूद है। मछुआरों के बीच का आपसी अन्तरविरोध। ताल में मछली मारने वाले मछुआरे लगभग एक हजार हैं, लेकिन किश्तियां सिर्फ 242 हैं। साफ है कि शिकारमाही की सारी जमीन पर यदि सिर्फ 242 किश्तियों के मालिकों के नाम मारूसी दर्ज होगी तो बाकी मछुआरे जो दूसरों की किश्तियों पर मछली मारते हैं उनको कोई खास फायदा नहीं होगा। सिर्फ यह फायदा होगा कि ताल का पानी निकलने के बाद जब ताल की गन्दगी साफ होगी तो ताल में अधिक मछलियां मारने को मिलेंगी। लेकिन, फिलहाल, यह प्रमुख समस्या नहीं है।

समस्या के समाधान का केवल एक ही रास्ता

ताल रतोय की समस्या इतनी उलझ चुकी है, कि इसका समाधान बहुत नाजुक मामला बन गया है।

समस्या का एक फौरी समाधान यह निकल सकता है कि ताल रतोय की 242 किश्तियों पर मारूसी दर्ज कराने के लिए सभी मछुआरों को एकजुट किया जाये। इससे मछुआरों गैर मछुआरों के बीच का झगड़ा एक हद तक सुलटाने में मदद मिल सकती है। लेकिन, यह काम भी बहुत आसान नहीं है। पिछड़ी चेतना के चलते सभी मछुआरे एकजुट होकर शासन से सीधे संघर्ष करने के लिए अभी तैयार नहीं है। व कानूनी लड़ाई पर ही बहुत अधिक भरोसा करते हैं। इससे दलालों की दुकानदारी चलती रहती है। वे अभी इस बात से निश्चिन्त हैं कि जब तक ताल में पानी है, उनका शिकारमाही का अधिकार सुरक्षित है।

लेकिन ताल रतोय के मछुआरों को देर-सवेर जागना ही होगा, क्योंकि सरकार जो नया जाल रच रही है, उससे उनका शिकारमाही का अधिकार हमेशा के लिए खत्म हो जाने का खतरा पूरी तरह बना हुआ है। सरकार इरादा कर चुकी है कि ताल रतोय के मछुआरों को किसी भी कीमत पर बेदखल करना है। फिर उसे, जैसी कि चर्चा है, या तो पर्यटक केन्द्र बनाकर मुनाफा कमाया जायेगा या सीधे किसी देशी-विदेशी पूंजीपति को पूरी तरह बेच दिया जायेगा।

ऐसी स्थिति में, समस्या का फिलहाली समाधान निकालने के लिए सभी मछुआरे ताल की जमीन पर 242 किश्तियों की मारूसी दर्ज कराने और हाहा नाले के भठे पड़े मुहाने की सफाई के लिए एकजुट होकर शासन से संघर्ष करें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो उनका शिकारमाही का बचा-खुचा हक भी पूरी तरह छीन लिया जायेगा।

लेकिन, यह भी समस्या का केवल फिलहाली समाधान होगा। इससे भी मछुआरों की जिन्दगी की तबाही खत्म नहीं होने वाली। मछुआरों को अपनी असली आज़ादी और खुशहाल जिन्दगी के लिए एक बड़ी लड़ाई के लिए तैयार होना ही होगा। क्योंकि देश का पूंजीवादी निजाम देश भर में मेहनतकश-मजदूरों पर वही तबाही मचा रहा है, जैसी उन पर बीत रही है। इसलिए, मछुआरों को पहले खुद एकजुट होते हुए देशभर के मजदूरों-मेहनतकशों की आजादी की क्रांतिकारी लड़ाई से अपने आप को जोड़ना ही होगा। जब तक समूचे देश में कायम श्रमिक द्रोही हुकूमत का तख्ता उलट कर मेहनतकशों का राज नहीं कायम होगा, तब तक असली आजादी और खुशहाली नहीं आयेगी। तालरतोय के मछुआरों की समस्या के स्थायी हल का यही अकेला रास्ता है। (*समाप्त*)

भूमिपतियों के जुल्मों-सितम के शिकारः गुजरात के लाखों खेत मजदूर

सुखदेव

गुजरात में 40 लाख से भी अधिक ग्रामीण मजदूर पूरी तरह भूमिपतियों के रहमो-करम पर जिन्दगी जीने के लिए मजबूर हैं। इन पर दोहरी मार है, इन्हें भयानक आर्थिक शोषण के साथ ही बर्बर उत्पीड़न और सामाजिक तिरस्कार भी झेलना पड़ता है। दरअसल यहां के भूमिपति ज्यादातर 'अच्छी' जाति 'दरबार' से संबंधित हैं और मजदूर दलित जातियों से संबंधित हैं। जिसके कारण आर्थिक शोषण और जातीय उत्पीड़न के दो पाटों के बीच यहां का खेतिहर मजदूर पिस रहा है। जैसे एक खेत मजदूर जो चमार जाति का है और चमड़े के काम को छोड़कर लम्बे समय से खेत का काम करता है, उसे आज भी भूमिपतियों के जूते ठीक करने पड़ते हैं। यदि वह इन्कार करे तो न सिर्फ भूमिपतियों की मारपीट का शिकार होगा बल्कि उसे काम से भी हाथ धोना पड़ जायेगा।

इन खेत मजदरों से प्रतिदिन 12 घंटे काम कराया जाता है और उन्हें मात्र 20 रुपये मजदूरी दी जाती है। जबकि 8 घंटे काम की सरकारी दर 35 रुपये है। हालात से मजबूर कोई भी मज़दूर इस अन्याय के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकता। गुजरात के भूमिपतियों के पास इकट्ठा बेशुमार दौलत के पीछे इन्हीं मजदूरो के श्रम की नग्न और बर्बर लूट है। और इस लूट को बनाए रखने के लिए वे सरकारी मशीनरी के साथ सामन्ती उत्पीड़न के समस्त हथकंडों का बेशर्मी से इस्तेमाल करते हैं। खेती का पूंजीवादीकरण और बाजारीकरण गांव के गरीब आबादी का कंगालीकरण करके उन्हें भूमिपतियों के सामने निकृष्ट कोटि का उजरती मजदूर बनने को विवश कर देती है।

ऐसी स्थिति में असंतोष की आग पर सरकार अपने कुछ सुधारवादी कार्यो से पानी के छींटे मारने का भी काम करती रहती है। इसी प्रक्रिया में कुछ ग्रामीण मजदूरों को भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े अलॉट किए गये। ये अलॉटमेंट सिर्फ कागज पर बने रहे। भूमिपतियों ने कभी भी इन गरीब-दलित मजदूरों को इन टुकड़ों पर काबिज नहीं होने दिया। एक खेतिहर मजदूर जीवाभाई को सरकार ने 1989 में 6.3 एकड़ जमीन अलॉट किया। उसपर जीवाभाई ने किसी तरह एक मकान बनाकर खेती शुरू की। और तबसे लेकर आज तक भूस्वामी और उनके पालतू गुण्डे इस परिवार और उसकी खेती पर चार बार हमले कर चुके हैं। इन हमलों में जीवाभाई का सबकुछ नष्ट हो जाता है। इसी तरह एक अन्य मजदूर ने जब खुद के जमीन को जोतना शुरू किया तो उसके द्वारा किराये पर लिए गये ट्रैक्टर को गुण्डों ने जला दिया। और यह सारी कार्रवाई पुलिस और स्थानीय प्रशासन की शह पर पूंजीवादियों भूस्वामियों द्वारा किया जाता रहा।

दक्षिण गुजरात का बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण हुआ है, लेकिन यहां भी मजदूरों का शोषण-उत्पीड़न उतना ही बर्बर है। अधिकांश मजदूर अपनी दैनिक जरूरतों के लिए सूदखोरों-महाजनों से कर्ज लेने को विवश होते हैं और इसे चुकाने के लिए उन्हें सालों-साल इन पटेलों के वहां बंधुआ मजदूरी करनी पड़ती है। आमतौर पर बच्चे बहुत कम उम्र से ही काम शुरू कर देते हैं। लगभग सभी खेतिहर मजदूर बताते हैं कि वे 5-6 वर्ष की उम्र से ही मजदूरी कर रहे हैं। ये बच्चे मजदूरी करके न सिर्फ अपना पेट पालते हैं, बल्कि अपने परिवार का भी।

इस क्षेत्र में बड़े पैमाने पर ईंट के भट्ठे हैं। इन ईंट के भट्ठों में काम रात 2 बजे से शुरू होकर अगली रात के 8 बजे तक दो शिफ्टों में चलता है। लगभग 18 घंटे काम करने पर एक मजदूर को 30 रुपया मजदूरी मिलती है। ये मजदूर अपने परिवार सहित भट्ठों के पास बने बाड़ों में रहते हैं और हर परिवार को प्रतिदिन 1100 ईंट बनाने होते हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन तथा अन्य इंसानी जरूरतों से इन मजदूरों का दूर तक कोई संबंध नहीं होता। इनके लिए छोटी बीमारी का भी अर्थ है ईश्वर की नाराजगी और मृत्यु।

पशु से भी खराब जीवन जीने को अभिशप्त इन मजदूरों में से यदि कोई कुछ विरोध करने को सोचे, किसी सभा-जुलूस में हिस्सा लेने की गलती करे तो मालिक सजा देने में एक पल की भी देरी नहीं करते। ऐसे मजदूरों को उनके गांव तथा करीब के गांवों में काम देना बन्द करवा दिया जाता है। 65 वर्षीय बुजुर्ग औरत काशीबेन को भी सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ता है और काम की तलाश में अपने गांव से बहुत दूर जाना पड़ता है।

गुजरात में लाखों लोग इस पाशविक गुलामी की जिन्दगी जी रहे हैं लेकिन ऐसा नहीं है कि वे इससे मुक्ति नहीं चाहते हैं। उनके अंदर गुस्सा है, लड़नें की हिम्मत है। कोई विकल्प न होने से कभी इस चुनावी पार्टी तो कभी उस चुनावी पार्टी के पीछे भटकते हैं। कभी धंधेबाज गैर सरकारी संगठनों के पीछे जाते हैं। एक सही क्रांतिकारी विकल्प खड़ा करके ही इन शक्तियों को भटकने से रोका जा सकता है और उनके मुक्ति के संघर्ष को व्यवस्था परिवर्तन के संघर्ष से जोड़ा जा सकता है।

मज़दूरों का समाजवाद क्या है?

स्तालिन

प्रस्तुत लेख विश्व सर्वहारा के महान नेता, लेनिन के योग्य शिष्य और सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के सूत्रधार कामरेड स्तालिन की पुस्तिका "अराजकतावाद या समाजवाद?" का एक महत्वपूर्ण अंश है। यह मूलत: एक लम्बा निबंध है, जिसकी चार किश्तें दिसम्बर 1906 और जनवरी 1907 के बीच जार्जियाई क्रांतिकारी पत्र 'अखाली द्रोयेबा' में प्रकाशित हुआ था। यह निबंध अधूरा ही रह गया, क्योंकि इसका बचा हुआ भाग प्रकाशित नहीं हो सका। कारण यह था कि 1907 में स्तालिन पार्टी-कार्य के लिए बाकू भेज दिये गये, जहां वे कुछ ही महीने बाद गिरफ्तार हो गये। पुस्तिका के अंतिम अध्यायों के लिए उन्होंने जो नोट तैयार कर रखे थे, वे भी पुलिस द्वारा तलाशी के दौरान खो गये।

निबंध का यहां प्रस्तुत अंश मज़दूर साथियों के लिए बेहद उपयोगी और ज़रुरी है।–*सम्पादक*

मौजूदा समाज-व्यवस्था पूंजीवादी व्यवस्था है। इसका मतलब यह है कि दुनिया दो विरोधी दलों में बंटी हुई है। एक दल थोड़े से मुटठी भर पूंजीपतियों का है। दूसरा दल बहुमत का, यानी मज़दूरों का है। मज़दूर दिन-रात काम करते हैं, परन्तु फिर भी ग़रीब रहते हैं। पूंजीपति काम कौड़ी का नहीं करते, परन्तु फिर भी मालामाल रहते हैं। ऐसा इसलिए नहीं है कि मज़दूरों में बुद्धि नहीं है और पूंजीपति अकल के पुतले हैं। ऐसा इसलिए होता है कि पूंजीपति मज़दूरों की मेहनत के फल को हड़प लेते हैं, मज़दूरों का शोषण करते हैं।

पर इसका क्या कारण है कि मज़दूरों की मेहनत से जो कुछ पैदा होता है उस पर पूंजीपति कब्ज़ा कर लेते हैं और वह मज़दूरों को नहीं मिलता? इसकी क्या वजह है कि पूंजीपति मज़दूरों का शोषण करते हैं और मज़दूर पूंजीपतियों का शोषण नहीं करते?

इसलिये कि पूंजीवादी व्यवस्था माल के उत्पादन पर आधारित है। मतलब यह है कि यहां हर चीज माल का रूप धारण कर लेती है, हर चीज बाजार में बिकती है, हर जगह खरीदने और बेचने के सिद्धान्त का दौर-दौरा है। यहां सिर्फ इस्तेमाल की चीजें नहीं बिकतीं, सिर्फ खाने-पहनने की वस्तुओं का ही मोल नहीं होता; इन्सानों की मेहनत करने की ताकत का भी मोल होता है, उनकी श्रम-शक्ति, उनका खून और उनकी आत्मा तक यहां बाज़ारों में बिकती है। पूंजीपतियों को यह बात मालूम है। वे मज़दूरों की श्रम-शक्ति खरीदते हैं, उनको नौकर रखते हैं। इसका मतलब यह है कि पूंजीपति जिस श्रम-शक्ति को खरीद लेते हैं, उसके मालिक बन जाते हैं, और मज़दूरों का उस श्रम-शक्ति पर कोई अधिकार नहीं रहता जो वे बेच चुके होते हैं। मतलब यह है कि उस श्रम-शक्ति से जो कुछ पैदा होता है, वह मज़दूरों का नहीं होता, सिर्फ पूंजीपतियों का होता है और उन्हीं की जेब में जाता है। आपने यदि अपनी श्रम-शक्ति बेच दी है, तो भले ही उसके एक दिन में 10 रुपये का माल तैयार होता हो, उससे आपका कोई सम्बन्ध नहीं। वह माल आपका नहीं होगा, वह तो सारा पूंजीपतियों का ही होगा। आप को जो कुछ मिलेगा, वह सिर्फ आपकी रोज़ाना उज़रत, दिन भर का वेतन है। यदि आप बहुत किफ़ायत से रहते हैं तो शायद उससे आपको दो रोटी मिल जाये। बस उससे अधिक कुछ नहीं। संक्षेप में, पूंजीपति मज़दूरों की मेहनत करने की ताकत उनकी श्रम-शक्ति खरीदते हैं, उन्हें नौकर रखते हैं; और यही कारण है कि पूंजीपति मज़दूरों का शोषण करते हैं और मज़दूर पूंजीपतियों का कुछ नहीं कर पाते।

परन्तु सवाल उठता है कि मज़दूरों की श्रम-शक्ति ये पूंजीपति ही क्यों खरीदते हैं? पूंजीपति ही मज़दूरों को क्यों नौकर रखते हैं और मज़दूर उन्हें क्यों नौकर नहीं रख पाते?

इसीलिए कि पूंजीवादी व्यवस्था का मुख्य आधार उत्पादन के साधनों तथा यन्त्रों पर चन्द आदमियों का व्यक्तिगत अथवा निजी स्वामित्व है, इसीलिए कि सारे कल-कारखाने, मिल और फैक्ट्रियां, जमीन और जंगल, रेलें और खानें, मशीनें और उत्पादन के दूसरे साधन मुटठी भर पूंजीपतियों की निजी सम्पत्ति बन गये हैं। और इसलिए कि मज़दूरों का इनमें से किसी चीज पर अधिकार नहीं है। यही कारण है कि पूंजीपति अपनी मिलों और फैक्ट्रियों को चलवाने के लिए मजदूरों को नौकर रखते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो उत्पादन के साधनों और यन्त्रों से उन्हें कोई लाभ न हो। और यही कारण है कि मज़दूर अपनी श्रम-शक्ति पूंजीपतियों के हाथ बेचते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो भूखों मर जायें।

इस सबसे पूंजीवादी उत्पादन के साधारण रूप पर काफी प्रभाव पड़ता है। पहले यह जाहिर है कि पूंजीवादी उत्पादन को एक कड़ी में नहीं बांधा जा सकता। उसे संगठित रूप नहीं दिया जा सकता। कारण कि वह अलग-अलग पूंजीपतियों के व्यक्तिगत कारखानों में बंटा हुआ है। दूसरे, यह बात भी साफ है कि इस बिखरे हुए, असंगठित उत्पादन का उद्देश्य लोगों की जरूरतों को पूरा करना नहीं, बिक्री के लिए माल तैयार करना है ताकि पूंजीपतियों के मुनाफे में इजाफा हो। परन्तु हर पूंजीपति अपना मुनाफा बढ़ाने की कोशिश करता है और उसके लिए ज्यादा माल तैयार करता है, इसलिए, जल्दी ही एक ऐसा वक्त आता है जब बाज़ार माल से पट जाते हैं, दाम गिरने लगते हैं, और एक आम आर्थिक संकट शुरू हो जाता है।

इसलिए, अर्थ-संकट, बेकारी उत्पादन का बार-बार रोका जाना, उत्पादन में फैली अराजकता और इस तरह की दूसरी बीमारियां आजकल के असंगठित पूंजीवादी उत्पादन का प्रत्यक्ष परिणाम है।

यदि अभी तक यह असंगठित सामाजिक व्यवस्था खड़ी हुई है, यदि अभी तक मज़दूरों के प्रहार उसे गिरा नहीं पाये हैं तो इसका मुख्य कारण यही है कि पूंजीवादी राज्य, पूंजीवादी सरकार उसकी रक्षा कर रही है।

यह है मौजूदा पूंजीवादी समाजवाद का आधार।

●

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भविष्य का समाज इससे बिल्कुल भिन्न आधार पर रचा जायेगा।

भविष्य का समाज समाजवादी समाज होगा। इसका मतलब सबसे पहले यह है कि उस समाज में वर्ग नहीं होंगे। उसमें न पूंजीपति होंगे न मज़दूर, और इसलिए उसमें शोषण भी नहीं होगा। उस समाज में केवल मज़दूर होंगे जो मिल-जुल कर मेहनत करेंगे।

भावी समाज समाजवादी समाज होगा। इसका मतलब यह भी है कि शोषण के खातमे के साथ-साथ बिक्री के माल का उत्पादन और चीजों का खरीदना-बेचना भी बन्द हो जाएगा और इसलिए तब न श्रम-शक्ति के खरीदने वाले रहेंगे और न बेचने वाले, न मालिक रहेंगे और न नौकर। उस समाज में केवल स्वतंत्र मज़दूर रहेंगे।

भावी समाज समाजवादी होगा। इसका मतलब, अन्त में, यह है कि उस समाज में उज़रत पर मज़दूरी कराने की प्रथा का तो खात्मा होगा ही, उसके साथ-साथ उत्पादन के साधनों तथा यन्त्रों पर चन्द लोगों का व्यक्तिगत अथवा निजी स्वामित्व भी पूरी तरह खतम हो जायेगा। तब न ग़रीब मज़दूर होंगे और न धनी। पूंजीपति तब केवल मज़दूर होंगे जो सामूहिक रूप से सारी ज़मीन और तमाम जंगलों के, सारी खानों और तमाम रेलों के, और सारे कल-कारखानों, इत्यादि के स्वामी होंगे।

और इसलिए, जाहिर है, भविष्य में उत्पादन का मुख्य उद्देश्य समाज की ज़रूरतों को पूरा करना होगा, न कि बिक्री के लिए माल तैयार करके पूंजीपतियों का मुनाफा बढ़ाना। तब बिक्री के माल के उत्पादन की, अथवा मुनाफे की हिस्सा बांट के लिए झगड़े-झंझट आदि की कोई ज़गह नही होगी।

इससे यह भी साफ है कि भावी उत्पादन समाजवादी ढंग से संगठित किया जायेगा और वह बड़े ऊंचे दर्जे का, उन्नत उत्पादन होगा। उसमें समाज की ज़रुरतों का पूरा-पूरा ध्यान रखा जायेगा और इसलिए तब केवल उतना ही माल तैयार होगा जितने की समाज को आवश्यकता होगी। अर्थात, तब न असंगठित और बिखरा हुआ उत्पादन होगा और न विभिन्न पूंजीपतियों में होड़ होगी; न अर्थ-संकट आयेंगे और न बेकारी फैलेगी।

जहां वर्ग न हो, जहां न धनी हों और न ग़रीब, वहां राज्य की भी कोई ज़रुरत नहीं रह जाती। वहां राजनीतिक शक्ति की भी कोई आवश्यक्ता नहीं होती। क्योंकि, राजनीतिक शक्ति ग़रीबों को दबाने और धनियों को बचाने के लिए ज़रुरी होती है; इसलिए समाजवादी समाज में राजनीतिक शक्ति की कोई आवश्यकता न होगी। इसीलिए कार्ल मार्क्स ने तो 1846 में ही कह दिया था कि –

"अपने विकास के दौरान में मज़दूर वर्ग पुराने पूंजीवादी समाज की जगह एक संघ बनायेगा जिसमें वर्ग और वर्गों के विरोध नहीं रहेंगे और जिसे राजनीतिक शक्ति कहते हैं वह शक्ति भी नहीं रहेगी" (देखिये दर्शन का दिवाला)...

इसीलिये एंगेल्स ने भी 1884 में कहा था:

अत: राज्य सत्ता अनादि काल से ही नहीं कायम है। ऐसे समाज भी दुनिया में देखे गये हैं जिनमें राज्य-सत्ता तथा राजनीतिक शक्ति का विचार लोगों के दिमाग में न था। आर्थिक विकास की एक विशेष अवस्था में, जब कि समाज वर्गों में बंट गया, तब राज्य सत्ता एक आवश्यक वस्तु बन गई। और अब हम तेजी से उत्पादन के विकास की उस अवस्था में प्रवेश कर रहे हैं जब वर्गों का अस्तित्व न केवल आवश्यक रहेगा, बल्कि वह उत्पादन के रास्ते में एक हानिकारक अड़ंगा बन जाएगा। तब जिस आवश्यम्भावी रूप से पहले वर्ग उत्पादन हुए थे उसी अवश्यम्भावी रूप से वर्ग मिट जायेंगे और उनके साथ-साथ राज्य सत्ता भी अवश्यम्भावी रूप से मिट जायेगी! तब समाज स्वतंत्र और समान उत्पादकों के संघ के आधार पर उत्पादन का संगठन करेगा और राज्य सत्ता की पूरी मशीन को उठाकर चरखे और कांसे की कुल्हाड़ी के साथ प्राचीन वस्तुओं के अज़ायबघर में रख देगा जो उसका उपयुक्त स्थान है।" (देखिये परिवार, व्यक्तिगत सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति)

इसके साथ-साथ जाहिर है, सार्वजनिक कामों की व्यवस्था के लिए समाजवादी समाज में भी विभिन्न प्रकार की सूचनाएं इकट्ठा करने वाले स्थानीय दफ्तरों के अलावा एक केन्द्रीय गणना केन्द्र भी होगा जो पूरे समाज की आवश्यकताओं के बारे में सूचना जमा करेगा और फिर इस सूचना के अनुसार मेहनत करने वालों के बीच विभिन्न प्रकार के काम बांट देगा। यदा-कदा सम्मेलन (कान्फ्रेन्स) अधिवेशन (कांग्रेस) भी करने होंगे, विशेषकर अधिवेशन जिनके फैसले अल्पमत वाले साथियों को भी अगले अधिवेशन तक मानने पड़ेंगे।

अन्तिम बात यह कि स्वतंत्र तथा सहयोगी ढंग से मेहनत करने का यह फल होगा कि भावी समाजवादी समाज में सब की सभी आवश्यकतायें समान रूप से, सहयोगी ढंग से और पूर्ण रूप से पूरी हो सकेंगी। इसका मतलब यह है कि यदि भावी समाज अपने हर सदस्य से अधिक से अधिक मेहनत करने की मांग करेगा तो बदले में वह हरेक को जरुरत की वे तमाम चीजें देगा जिनकी उसे जरूरत होगी। हरेक को अपनी योग्यता के अनुसार मेहनत करनी चाहिए और हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना चाहिए-- यह है वह सिद्धान्त जिसक आधार पर भविज़्य की सामूहिक व्यवस्था रची जाएगी। कहने की आावश्यकता नहीं कि समाजवाद की शुरु की अवस्था में ऐसे अनेक लोग भी होंगे जिन्हें मेहनत करने की आदत नहीं होगी और जिन्होंने जीवन का नया ढंग अभी सीखना शुरू किया होगा। उस वक्त उत्पादन की शक्तियों का भी काफी विकास नहीं हो पायेगा और 'गन्दे' और साफ काम का अंतर भी नहीं मिटा होगा। ऐसी अवस्था में जाहिर है, "हरेक को उसकी अवश्यकता के अनुसार मिलना चाहिए" वाला सिद्धान्त आसानी से लागू नही किया जा सकेगा, और परिणाम-स्वरूप तब समाज को अस्थायी रूप से, कोई और रास्ता, कोई बीच का रास्ता अपनाना पड़ेगा। परन्तु साथ ही यह बात भी साफ है कि जव भावी समाज अपने ढर्रे पर लग जावेगा, जब पूंजीवाद के बचे-खुचे तमाम निशान मिट चुके होंगे, तब समाजवादी समाज के अनुरूप केवल वही सिद्धान्त होगा जिसका हमने ऊपर जिक्र किया है।

इसीलिए, मार्क्स से 1875 में कहा था:

"कम्युनिस्ट (अर्थात समाजवादी) समाज की ऊंची अवस्था में, जब व्यक्ति, श्रम-विभाजन का दास न रहेगा और उसके साथ-साथ मानसिक तथा शारीरिक श्रम का अन्तर मिट चुका होगा; जब श्रम जीवन यापन करने का साधन ही नहीं, जीवन की मुख्य आवश्यकता बन गया होगा; जब व्यक्ति के चौमुखी विकास के साथ-साथ उत्पादन की शक्तियों में भी खूब वृद्धि हो चुकी होगी केवल उसी अवस्था में पूंजीवादी अधिकार की संकुचित सीमाओं को पूरी तरह पार किया जा सकेगा और तभी समाज अपने झंडों पर यह अंकित कर सकेगा कि 'हरेक को अपनी योग्यता के अनुसार मेहनत करनी चाहिए, हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना चाहिए।" (देखिए "गोथा-कार्यक्रम की समीक्षा।")

भावी समाजवादी समाज की, मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार, मोटे तौर पर, यह रूपरेखा है।

अच्छा, यह तो सब ठीक है। पर क्या ऐसा समाजवाद कायम हो सकेगा; क्या हम यह मानकर चल सकते हैं कि आदमी कभी अपनी "जंगली आदतों" को छोड़ देगा?

या यूं कहिए कि हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना है तो क्या समाजवादी समाज की उत्पादन की शक्तियां इतना पैदा कर सकेंगी?

समाजवादी समाज के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन की शक्तियों का काफी विकास हो चुका हो और लोगों में समाजवादी चेतना पैदा हो चुकी हो, उनमें समाजवादी जाग्रति आ चुकी हो। वर्तमान समय में उत्पादन की शक्तियों का विकास पूंजीवादी सम्पत्ति के कारण रुका हुआ है। परन्तु यदि हम इस बात का ध्यान रखें कि यदि पूंजीवादी सम्पत्ति भावी समाज में नही रहेगी, तब यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि उस समाज में उत्पादन शक्तियां दस गुनी हो जायेंगी। साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भावी समाज में आजकल के ये लाखों मुफ्तखोर, और इसके अलावा आजकल के बेरोजगार लोग भी काम कर सकेंगे और उससे मेहनत करने वालों की संख्या और बढ़ जायेगी, और उससे उत्पादन की शक्तियों के विकास में बड़ा बढ़ावा मिलेगा। जहां तक इंसानों की "जंगली" भावनाओं और आदतों का सवाल है, ये चीजें इतनी अजर-अमर नहीं हैं जितनी कुछ लोग समझते हैं। एक जमाना था, जब आदमी कम्युनिज्म के समाज में, इंसान को व्यक्तिगत सम्पत्ति का ध्यान भी न था। फिर एक जमाना आया जब व्यक्तिगत सम्पत्ति का खयाल लोगों के दिल व दिमाग पर हुकूमत करने लगा। और अब फिर एक नया जमाना आ रहा है-- समाजवादी उत्पादन का जमाना। तब यदि लोगों के दिल और दिमाग समाजवादी भावनाओं में रंग जायें तो क्या आश्चर्य होगा? क्या हम यह नही स्वीकार कर चुके कि लोगों की "भावनाएं" और मतामत उनके जीवन द्वारा निश्चित होते हैं?

परन्तु, इसका क्या सबूत है कि समाजवादी व्यवस्था का कायम होना अवश्यम्भावी है? क्या यह लाजिमी है कि आधुनिक पूंजीवाद के विकास के बाद समाजवाद ही कायम हो? या, दूसरे शब्दों में यूं कहिए कि हम यह कैसे समझे कि मार्क्स का मज़दूरों का समाजवाद केवल एक भावात्मक सपना एक कल्पना मात्र नही है? उसके यथार्थ होने का वैज्ञानिक सबूत क्या है?

इतिहास बताता है कि सम्पत्ति का रूप सीधे उत्पादन के रूप से निश्चित होता है और उसके परिणाम-स्वरूप, उत्पादन के स्वरूप में कोई परिवर्तन होता है तो देर-सबेर सम्पत्ति के स्वरूप में भी परिवर्तन हो ही जाता है। ऐसा होना लाजिमी होता है। एक जमाना था जब सम्पत्ति का स्वरूप कम्युनिस्ट था और जब वे जंगल और मैदान जिनमें आदिम समाज के जंगली नर-नारी घूमा करते थे, सभी की सम्पत्ति हुआ करती थी, न कि चन्द व्यक्तियों की। प्रश्न है कि उस समय सम्पत्ति का स्वरूप कम्युनिस्ट क्यों था? इसलिए कि उस वक्त उत्पादन कम्युनिस्ट था। लोग मिलकर, एक साथ सामूहिक रूप से मेहनत करते थे। बिना सबके सहयोग के किसी का काम नहीं चलता था। फिर एक दूसरा जमाना आया। निम्न पूंजीवादी उत्पादन काम शुरू हुआ, जब सम्पत्ति ने व्यक्तिगत (निजी) रूप धारण कर लिया और हर वह चीज जिसकी आदमी को जरुरत थी (हवा, सूरज की रोशनी, आदि को, जाहिर है, छोड़कर) व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी जाने लगी। यह परिवर्तन क्यों हुआ? इसलिए कि इस जमाने में उत्पादन व्यक्तिगत हो गया था। हर आदमी दूसरों से अलग-अलग, सिर्फ अपने लिए काम करता था। अन्त में, बड़े पैमाने का पूंजीवादी उत्पादन शुरू हुआ, जब सैकड़ों और हज़ारों मज़दूर एक छत के नीचे, एक कारखाने में, मिलकर सामूहिक रूप से काम करते हैं। अब काम करने का वह पुराना व्यक्तिगत तरीका नहीं रहा जब हर आदमी अपनी ढाई चावल की खिचडी अलग पकाता था। अब तो हर आदमी का उसके खाते में काम करने वाले दूसरे आदमियों के काम से गहरा सम्बन्ध रहता है। और एक खाते के लोगों का दूसरे तमाम खातों के काम से सम्बन्ध रहता है। यदि किसी एक खाते में काम बन्द हो जाय तो बाकी खाते अपने आप बन्द हो जाते हैं: इस प्रकार, आप देखते हैं,कि उत्पादन की क्रिया ने, मेहनत अथवा श्रम ने अभी से सामाजिक रूप धारण कर लिया है। मेहनत अभी से समाजवादी रंग में रंगी नजर आने लगी है और यह केवल अलग-अलग कारखानों के लिए ही सच नहीं है। एक प्रकार के सभी कारखानों में और विभिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धों में भी इतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध देखा जाता है। यदि रेलों के मज़दूर हड़ताल करते हैं तो सभी उद्योग-धन्धों को लकवा सा मार जाता है। तेल और कोयले के उद्योग किसी कारण बन्द हो जायें तो कुछ समय बाद सभी कल कारखानों में ताला पड़ जाता है। इसलिए, जाहिर है कि अब उत्पादन की क्रिया ने सामाजिक अथवा सामूहिक रूप धारण कर लिया है। परन्तु पैदावार पर स्वामित्व अभी भी व्यक्तिगत है, और स्वामित्व का यह व्यक्तिगत रूप चूंकि पैदावार के सामाजिक रूप का विरोधी है, क्योंकि आधुनिक सामूहिक श्रम का अवश्यम्भावी परिणाम सामूहिक सम्पत्ति होना है, इसलिए यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जिस तरह रात के बाद दिन आता है, उसी तरह पूंजीवाद के बाद समाजवाद का आना भी लाजिमी है।

इस प्रकार इतिहास स्वयं इस बात का साक्षी है कि मार्क्स ने मज़दूरों के जिस समाजवाद का प्रतिपादन किया है , उसकी स्थापना अवश्यम्भावी है।

●

इतिहास बताता है कि जिस वर्ग, या सामाजिक दल का समाज के उत्पादन. में प्रमुख भाग होता है

(पेज 5 पर जारी)

मज़दूरों का समाजवाद क्या है?

(पेज 4 से जारी)

और जो उत्पादन की क्रिया में खास-खास काम करता है, वही वर्ग आगे चलकर अवश्यम्भावी रूप से, सारे उत्पादन का संचालन अपने हाथ में संभालता है। एक जमाना था जब समाज में मातृसत्ता थी और स्त्रियों को उत्पादन का संचालन करने वाली समझा जाता था। ऐसा क्यों था? इसलिए कि उस वक्त उत्पादन आदिम ढंग की खेती के रूप में होता था ओर उसमें सबसे महत्वपूर्ण भाग स्त्रियों का रहता था। वे ही सारे खास-खास काम किया करती थीं; और पुरुष शिकार की खोज में जंगलों में घूमा करते थे। फिर एक वक्त आया जब पितृ-सत्ता कायम हुई और उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण भाग पुरुषों का हो गया। वह परिवर्तन क्यों हुआ? इसलिए कि उस वक्त उत्पादन पशु-पालन के रूप में होता था और उसमें उत्पादन के मुख्य यन्त्र भाला, तीर-कमान और फेंककर जंगली जानवरों को पकड़ने वाला रस्सा थे, जिन्हें पुरुष चलाते थे। इसलिए, उस वक्त उत्पादन में मुख्य भाग पुरुषों का था। उसके बाद बड़े पैमाने के पूंजीवादी उत्पादन का जमाना आया, उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण भाग मज़दूरों का होगया। उत्पादन के सारे खास-खास काम उन्हीं के हाथों में चले गए। ऐसी हालत पैदा हो गई कि मजदूर एक दिन काम न करें (आम हड़तालों की याद कीजिए) तो उत्पादन का सारा कारोबार ठप्प हो जाय। और पूंजीपति उत्पादन में आवश्यक होने के बजाय उसके लिए भारी रुकावट बन गए। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह है कि या तो मज़दूर वर्ग देर-सबेर आधुनिक उत्पादन का संचालन अपने हाथों सम्भालेगा, उसका एकमात्र स्वामी--समाजवादी स्वामी बन जायेगां वरना सारा सामाजिक जीवन एकदम ठप्प हो जायेगा।

आधुनिक औद्योगिक संकट, जिन्हें वास्तव में, पूंजीवादी सम्पत्ति की मौत के समय की छटपटाहट समझना चाहिये, हमारे सामने दो-टूक यह सवाल रख रहे हैं कि पूंजीवाद रहेगा या समाजवाद कायम होगा? – इन आर्थिक संकटों से यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है – और इस परिणाम पर पहुंचने से आप बच नहीं सकते – कि पूंजीपति दूसरों का खून चूस कर मोटी होने वाली, मुफ्तखोर जोंकें हैं और समाज़वाद की विजय लाजिमी है।

इस प्रकार इतिहास इस बात का एक और सबूत देता है कि मार्क्स का मजदूरों का समाजवाद अवश्यम्भावी है।

मजदूरों का समाजवाद कोरी भावनाओं पर, या हवाई 'न्याय' के सिद्धान्तों पर अथवा मजदूरों के प्रति प्रेम पर नहीं खड़ा है। उसका आधार वैज्ञानिक स्थापनायें हैं जिनका हम ऊपर जिक्र कर चुके हैं।

यही कारण है कि मज़दूरों के समाजवाद को 'वैज्ञानिक समाजवाद' भी कहा जाता है।

एंगेल्स ने 1877 में ही लिखा था:

'मेहनत से पैदा होने वाली चीजों के बंटवारे की मौजूदा व्यवस्था कुछ दिन में लाजिमी तौर पर खत्म हो जाएगी – इस विश्वास का यदि हमारे पास केवल इतना ही आधार है कि चूंकि यह न्याय युक्त व्यवस्था नहीं है, इसलिए कुछ समय बाद इसका अन्त होना और न्याय की अन्त में विजय होना लाजिमी है, तो हमारी हालत कुछ बहुत अच्छी नहीं होगी और मुमकिन है कि हमें बहुत ज्यादा इन्तजार करना पड़ेगा।' सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 'उत्पादन की आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था ने उत्पादन की जो शक्तियां उत्पन्न कर दी हैं और पैदावार बांटने की व्यवस्था कायम कर दी है, वे स्वयं इस उत्पादन व्यवस्था से टकरा रही है और असल में तो उनका संघर्ष इतना बढ़ गया है कि यदि आधुनिक समाज का विनाश नहीं हो जाना है तो उत्पादन तथा बंटवारे के ढंग में एक क्रान्ति का होना आवश्यक है – ऐसी क्रान्ति का जो सारे वर्ग भेदों का अंत कर दे। आधुनिक समाजवाद का यह विश्वास कि अन्त में उसकी विजय होगी इस ठोस, भौतिक सत्य पर आधारित है, न कि किसी कुर्सी तोड़ दार्शनिक की न्याय-अन्याय की कल्पनाओं पर।' (देखिये डयूहरिंग मतखण्डन)

पर जाहिर है, इसका यह मतलब नहीं कि पूंजीवाद चूंकि सड़ रहा है, इसलिए हम जिस दिन चाहें, समाजवाद स्थपित कर सकते हैं। यह तो केवल अराजकतावादी और दूसरे निम्न-पूंजीवादी विचारक ही सोच सकते हैं। समाजवादी आदर्श समाज के सारे वर्गों का आदर्श नहीं है। वह केवल मज़दूर वर्ग का आदर्श है समाजवाद की स्थापना में सभी वर्गों का प्रत्यक्ष हित नहीं है, प्रत्यक्ष हित तो उसमें केवल मज़दूर वर्ग का ही है। मतलब यह कि जब तक मज़दूर-वर्ग समाज का सिर्फ एक छोटा सा हिस्सा है, तब तक समाजवादी व्यवस्था की स्थापना असम्भव है। समाजवाद की स्थापना के लिए पहले कई शर्तों का पूरा होना आवश्यक है; जैसे, उत्पादन के पुराने ढंग का सड़ने लगना, पूंजीवादी उत्पादन का केन्द्रीयकरण हो जाना और समाज के अधिकतर लोगों का मज़दूरों में बदल जाना। और इतना ही काफी नहीं है। सम्भव है कि समाज के अधिकतर लोग मज़दूरों में बदल गये हों और फिर समाजवाद कायम करना नामुमकिन हो। कारण कि इन सब बातों के अलावा समाजवाद की स्थापना के लिए यह भी आवश्यक है कि मज़दूरों में वर्ग चेतना हो, एकता हो और अपने मामलो को खुद सुलझाने और उनका इन्तजाम करने की उनमें योग्यता हो। इन सब बातों को हासिल करने के लिए जरूरी है कि समाज में राजनीतिक स्वतन्त्रता हो। राजनैतिक स्वतन्त्रता का मतलब है बोलने, लिखने, छापने, हड़ताल करने और संगठन करने की स्वतन्त्रता, या संक्षेप मे कहिए, वर्ग-संघर्ष चलाने की स्वतन्त्रता। इसलिये, यह प्रश्न मज़दूर-वर्ग के लिए कम महत्व की नहीं है कि उसे किन परिस्थितियों में वर्ग-संघर्ष लाना पड़ रहा है – सामन्ती तानाशाही की परिस्थितियों में (जैसे रूस में), या वैधानिक राजतन्त्र की परिस्थितियों में (जैसे जर्मनी में), या पूंजीपतियों के प्रजातन्त्र की परिस्थितियों में (जैसे फ्रांस में), अथवा एक जनवादी प्रजातन्त्र की परिस्थितियों में (जिनकी रूस का सामाजिक-जनवादी आन्दोलन मांग कर रहा है) राजनीतिक स्वतन्त्रता सबसे अधिक जनवादी प्रजातन्त्र में रहती हैं। यहां सबसे अधिक से हमारा मतलब, जाहिर है, यह है कि पूंजीवाद के कायम रहते हुए अधिक से अधिक राजनीतिक स्वतन्त्रता किस प्रकार की शासन-प्रणाली के अन्तर्गत मिल सकती हैं इसलिए, मज़दूरों के समाजवाद का समर्थन करने वाले सभी लोग लाज़मी तौर पर जनवादी प्रजातन्त्र कायम करने की कोशिश करते हैं और समझते हैं समाजवाद तक पहुंचने के लिए जनवादी प्रजातन्त्र सबसे अच्छे 'पुल' का काम करता है।

इसलिए मौजूदा परिस्थितयों में मार्क्सवादी कार्यक्रम दो हिस्सों में बांट दिया गया है एक अधिकतम कार्यक्रम है जिसका लक्ष्य समाजवाद है, दूसरा न्यूनतम कार्यक्रम है जिसका लक्ष्य जनवादी प्रजातन्त्र कायम करके समाजवाद का रास्ता खोल देना है।

●

अपना कार्यक्रम पूरा करने के लिए, पूंजीवाद को खत्म करने तथा समाजवाद की रचना करने के लिए मज़दूर-वर्ग को क्या करना चाहिए?

जवाब साफ है। मज़दूर-वर्ग पूंजीपति-वर्ग के साथ सुलह करके समाजवाद नहीं कायम कर सकता। उसे तो सदा संघर्ष के पथ पर ही चलना है और यह संघर्ष वर्ग-संघर्ष होगा – सारे पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध पूरे मज़दूर वर्ग का संघर्ष। या तो पूंजीपति वर्ग और उसका पूंजीवाद रहेगा, या मज़दूर-वर्ग और उसका समाजवाद। मजदूर-वर्ग को अपने सारे कार्य इस आधार पर करने हैं, इस आधार पर अपना वर्ग-संघर्ष चलाना है।

परन्तु मज़दूरो का वर्ग-संघर्ष अनेक रूपों में प्रकट होता है। उदाहरण के लिए, हड़ताल – चाहे वह आंशिक हो या आम हड़ताल – वर्ग-संघर्ज का ही एक रूप है, बहिष्कार अथवा 'बायकाट' आन्दोलन और तोड़-फोड़ भी निश्चय ही वर्ग-संघर्ष के रूप हैं। सभा, प्रदर्शन, जुलूस और सार्वजनिक प्रतिनिधि सभाओं में – चाहे वे राष्ट्रीय पार्लियामेन्ट हो अथवा स्थानीय बोर्ड अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजना, ये भी वर्ग-संघर्ष के रूप हैं। ये सब वर्ग-संघर्ष के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यहां हम इस सवाल पर विचार नहीं करेंगे कि मज़दूर-वर्ग के लिए संघर्ज के किस रूप का अधिक महत्व है। इस विज़य पर यहां केवल इतना कहेंगे कि अपनी वर्ग चेतना बढ़ाने तथा संगठन को मजबूत करने के लिए देश और काल को देखते हुए संघर्ष के इन सभी रूपों की मज़दूर वर्ग को आवश्यकता पड़ती है। और वर्ग चेतना तथा संगठन की मज़दूर वर्ग को उतनी आवश्यकता है जितनी उसको सांस लेने के लिए हवा की जरूरत है परन्तु, इसके साथ-साथ यहां यह भी बता दिया जाय कि मजदूर वर्ग के लिए संघर्ष के सभी रूप केवल तैयारी का काम करते हैं। इनमें से कोई भी रूप ऐसा नहीं है जिसे संघर्ष का निश्चयात्मक रूप समझा जा सके और जिसके द्वारा मजदूर वर्ग पूंजीवाद को नष्ट कर सके। पूंजीवाद को केवल आम हड़ताल के जरिए खतम नहीं किया जा सकता। आम हड़ताल से चन्द ऐसी परिस्थितियां भर पैदा हो सकती हैं जो पूंजीवाद को नष्ट करने के लिए आवश्यक है। और यह बात तो कल्पना के बाहर है कि पार्लियामेन्ट में केवल अपने प्रतिनिधि भेजकर मजदूर वर्ग पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने में सफल हो जाय। पार्लियामेन्ट-व्यवस्था को भी कुछ ऐसी परिस्थितियां भर तैयार करने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है जो पूंजीवाद को नष्ट करने के लिए आवश्यक है।

तब फिर निश्चयात्मक उपाय कौन सा है जिसके द्वारा मज़दूर वर्ग पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करेगा?

यह उपाय है समाजवादी क्रान्ति

हड़तालें, बहिष्कार, आन्दोलन, चुनाव लड़ना और पार्लियामेंट में प्रतिनिधि चुन कर भेजना, सभाएं, जलूस और प्रदर्शन-ये सब संघर्ष के ऐसे रूप हैं जो मजदूर वर्ग को तैयार करने तथा उसका संगठन बढ़ाने के लिए बड़े उपयोगी हैं। परन्तु इनमें से कोई भी ऐसा उपाय नहीं है जिससे वर्तमान असमानता का अन्त किया जा सके। इन सब उपायों को एक प्रधान और निश्चयात्मक उपायों में केन्द्रित करना पड़ेगा। मज़दूर वर्ग को एक दिन उठ कर हिम्मत और निश्चय के साथ पूंजीवाद को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए हमला बोलना पड़ेगा। यह प्रधान एवं निश्चयात्मक उपाय है समाजवादी क्रांति।

समाजवादी क्रांति को कोई तुरत-फुरत की चीज नहीं समझना चाहिए। यकायक हल्ला बोला और झट से क्रांति हो गयी, ऐसा नहीं है। समाजवादी क्रांति तो लम्बा संघर्ष है जिसे मजदूर जनता बहुत दिनों तक चलाती है और पूंजीपति वर्ग को शिकस्त देती है और उसके मोर्चों पर कब्जा कर लेती है और चूंकि मजदूर वर्ग की विजय के साथ-साथ पराज़ित पूंजीपति-वर्ग पर मजदूर-वर्ग का प्रभुत्व कायम होगा, चूंकि वर्ग-संघर्ष में एक वर्ग की पराजय का मतलब दूसरे वर्ग के प्रभुत्व का कायम होना होता है, इसीलिए समाजवादी क्रांति का पहला चरण पूंजीपति-वर्ग के ऊपर मजदूर-वर्ग के राजनीतिक प्रभुत्व की स्थापना के रूप में प्रकट होगा। अत: समाजवादी क्रांति प्रारम्भ होगी मजदूर-वर्ग के समाजवादी अधिनायकत्व (या डिक्टेटरशिप) की स्थापना से मजदूर-वर्ग को सबसे पहले ताकत पर कब्जा करना पड़ेगा।

मतलब यह कि जब तक पूंजीपति-वर्ग पूरी तरह परास्त नहीं हो जाता, जब तक उसकी दौलत नहीं छीन ली जाती, तब तक मज़दूर-वर्ग के पास, लाजिमी तौर पर, फौजी ताकत रहनी चाहिए। तब तक, लाजिमी तौर पर उसके पास एक ऐसा 'मजदूर दस्ता' होना चाहिए जिसकी मदद से वह मरणोन्मुख पूंजीपति-वर्ग के क्रांति-विरोधी हमलों का मुकाबला कर सके – ठीक उसी तरह जैसे कम्यून के समय पेरिस के मजदूरों ने किया था।

पूंजीपति-वर्ग की सम्पत्ति छीनने के लिए, सभी पूंजीपतियों की जमीन-जंगल, कल-कारखानों, मशीनों और रेलों पर कब्जा करने के लिए मजदूर-वर्ग का समाजवादी अधिनायकत्व अत्यन्त आवश्यक है।

पूंजीपति-वर्ग की सम्पत्ति छीन लेना – यह समाजवादी क्रांति का आवश्यक परिणाम होना चाहिए।

अस्तु: यह है वह प्रधान एवं निश्चयात्मक उपाय जिसके द्वारा मज़दूर – मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करेगा।

कार्ल मार्क्स ने, इसीलिए, 1847 में लिखा था।

....क्रांति के समय मजदूर-वर्ग का पहला कदम यह होगा कि वह अपने को शासक वर्ग की स्थिति पर पहुंचा दे।.... अपने राजनीतिक प्रभुत्व को मज़दूर-वर्ग, पूंजीपति वर्ग से धीरे-धीरे सारी पूंजी छीन लेने के लिए और उत्पादन के सभी साधनों को शासक-वर्ग के रूप में संगठित मजदूर-वर्ग के हाथों में केन्द्रित कर देने के लिए इस्तेमाल करेगा।' (देखिए कम्युनिस्ट घोषणा पत्र)।

यदि समाजवाद कायम करना है तो मजदूर-वर्ग को इसी रास्ते पर चलना पड़ेगा।

इस साधारण सिद्धान्त से कार्य-नीति के और तमाम सवाल हल हो जाते हैं। हड़ताल, बहिष्कार-आन्दोलन, सभा जुलूस ओर प्रदर्शन, तथा पार्लियामेण्ट में प्रतिनिधि चुनकर भेजना – इन सब का महत्व केवल इसी बात में है कि समाजवादी क्रांति करने के लिए मजदूर वर्ग को संगठित करने, उसकी ताकत बढ़ाने और उसके संगठनों को विस्तृत करने में वे कितने सहायक होते हैं।

●

अत: समाजवाद कायम करने के लिए समाजवादी क्रांति की आवश्यकता है, और समाजवादी क्रांति की शुरूआत मजदूर-वर्ग के अधिनायकत्व में होनी चाहिए। यानी, मजदूर-वर्ग को राजनीतिक ताकत पर कब्जा कर लेना चाहिए और फिर उसे पूंजीपति-वर्ग की सम्पत्ति छीन लेने के लिए इस्तेमाल करना चाहिए।

परन्तु, यह सब करने के लिए मजदूर-वर्ग को संगठित होना चाहिए; मजदूरों में एकता होनी चाहिए, उसका संगठन मजबूत होना चाहिए और उसकी ताकत को दिन-दूना और रात चौगुना बढ़ना चाहिए।

मजदूरों के संगठन के क्या-क्या रूप होंगे?

सबसे प्रचलित संगठन जिसमें आम मजदूर शामिल होते हैं ट्रेड यूनियन अथवा मजदूर-सभाएं और मजदूरों की सहयोग-समितियां (जो अधिकतर उत्पादकों तथा खरीददारोंकी सहयोग-समितियां होती हैं) हैं। ट्रेड-यूनियनों अर्थात् मज़दूर यूनियनों या मज़दूर-सभाओं का उद्देश्य (मुख्यत:) मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था के कायम रहते हुए भी मजदूरों की हालत में सुधार करना होता है। इसी प्रकार सहयोग-समितियों का भी उद्देश्य पूंजीवाद के कायम रहते हुए (मुख्यत:) व्यापारिक पूंजी से लड़ना होता है ताकि जीवन की सबसे जरूरी चीजों के दाम कम किये जासकें और उससे मजदूरों में इन चीजों का इस्तेमाल बढ़ सके। मजदूर-वर्ग को निस्संदेह मजदूर-सभाओं और सहयोग-समितियों की आवश्यकता है क्योंकि उनके द्वारा मजदूर जन समूह का संगठन किया जाता है। अत: मार्क्स और एंगेल्स के, अथवा मजदूरों के समाजवाद के दृष्टिकोण से संगठन के इन दोनों रूपों का मजदूर-वर्ग को इस्तेमाल करना चाहिए और वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों में जितना भी सम्भव हो उनकी ताकत बढ़ानी चाहिए।

परन्तु सिर्फ मजदूर-सभाएं और सहयोग – समितियां ही लड़ाकू मजदूर वर्ग की संगठनात्मक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकतीं। यह इसलिये कि इस प्रकार के संगठन पूंजीवाद की सीमाओं के बाहर नहीं जा सकते, क्योंकि उनका उद्देश्य पूंजीवाद के अन्तर्गत मजदूरों की हालत में सुधार करना है। परन्तु मजदूर तो इस पूंजीवादी गुलामी से पूरी तरह छुटकारा पाना चाहते हैं। वे तो इन सीमाओं को भंग कर देना चाहते हैं वे पूंजीवाद की सीमाओं के भीतर चक्कर लगाना नहीं चाहते। अत: मजदूर सभाओं और सहयोग समितियों के अलावा एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो अपने इर्द-गिर्द सभी पेशों के ऐसे मजदूरों को इकट्ठा कर सकें जिनकी वर्ग-चेतना जागृत हो चुकी है। एक ऐसा संगठन होना चाहिए जो मजदूर वर्ग को एक सहज वर्ग बना दे और जिसका मुख्य उद्देश्य पूंजीवादी व्यवस्था को खतम करना और समाजवादी क्रांति की तैयारी करना हो।

ऐसा संगठन मजदूर वर्ग की सामाजिक जनवादी पार्टी है।*

यह पार्टी एक वर्ग पार्टी होगी। दूसरी सब पार्टियों से वह बिल्कुल स्वतंत्र रहेगी। यह इसलिये कि मजदूर वर्ग की पार्टी है और मजदूर-वर्ग खुद ही अपने को आजाद कर सकता है।

यह पार्टी एक क्रांतिकारी पार्टी होगी। यह इसलिए कि मजदूरों को केवल क्रांतिकारी उपायों से, समाजवादी क्रांति द्वारा ही आजाद किया जा सकता है।

यह पार्टी एक अन्तर्राष्ट्रीय पार्टी होगी। पार्टी के दरवाजे ऐसे सभी मजदूरों के लिये खुले होंगे जिनकीवर्ग चेतना जागृत हो चुकी है। यह इसलिए कि मजदूरों की आजादी का सवाल कोई राष्ट्रीय सवाल नहीं है। वह तो एक सामाजिक सवाल है; जार्जिया के मजदूरों के लिए उसका जितना महत्व है, उतना ही रूसी मज़दूरों के लिए है, और उतना ही और देशों के मजदूरों के लिए है।

अत: यह बात स्पष्ट है कि विभिन्न राष्ट्रा मजदूरों में जितनी एकता होगी, उनके बीच खड़ी की गई राष्ट्रीय हदबन्दियां जितनी ही टूटेंगी, मजदूर-वर्ग की पार्टी भी उतनी ही मजबूत होती जायेगी और मजदूरों का एक अविभाज्य वर्ग के रूप में संगठित करने के काम में उतनी ही आसानी होगी।

इसलिए, आवश्यक है कि चाहे पार्टी हो या मजदूर सभा अथवा सहयोग समिति, मजदूरों के हर संगठन में जहां तक सम्भव हो केन्द्रीयतावाद के सिद्धान्त को लागू किया जाए और उन्हें ढीला-ढाला संघ न बनाया जाय।

यह भी स्पष्ट है कि राजनीतिक एवं दूसरी परिस्थितियां जहां तक इस बात की इजाजत दें, इन सभी संगठनों की रचना जनवादी, सिद्धान्तों के आधार पर होनी चाहिए।

पार्टी और मजूदर सभाओं तथा सहयोग समितियों के बीच क्या सम्बन्ध रहना चाहिए? मजदूर सभाओं और सहयोग समितियों को पार्टी से जुड़ा रहना चाहिए या नहीं? इस सवाल का जवाब इस बात पर निर्भर करता है कि मजदूर-वर्ग को कहां और किन परिस्थितियों के बीच लड़ना है। कुछ भी हो, इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि मजदूरों की समाजवादी पार्टी की ओर मजदूर सभाओं और सहयोग समितियों का जितना ही मित्रतापूर्ण रुख होगा, उतनी ही दोनों की ताकत बढ़ेगी। और इसलिए कि यदि इन आर्थिक संगठनों का एक मजदूर समाजवादी पार्टी से खूब घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रहता तो अक्सर इनके कारण अलग-अलग पेशों के छोटे, संकुचित स्वार्थ ऊपर आ जाते हैं और पूरे मजदूर-वर्ग का साधारण स्वार्थ पीछे पड़ जाता है और उससे मजदूर-वर्ग को बहुत नुकसान पहुंचता है' इसलिए, आवश्यक है कि हर जगह इस बात का ख्याल रखा जाय कि मजदूर सभायें और सहयोग समितियां पार्टी के सैद्धांतिक तथा राजनीतिक असर में रहें। ऐसा करने से ही ये संगठन समाजवाद के स्कूलों में बदले जा सकेंगे जिनमें शिक्षा पाकर आज के ये अलग-अलग दलों में बंटे हुए मजदूर एक सजग संगठित वर्ग बन जायेंगे।

मार्क्स और एंगेल्स के सर्वहारा (मजदूरों के) समाजवाद की, मोटे रूप से, ये विशेषताएं हैं।

*उन दिनों रूस में मज़दूर-वर्ग की पार्टी को सामाजिक जनवादी पार्टी कहते थे; कम्युनिस्ट पार्टी नाम बाद में दिया गया। अनुवादक

जनमुक्ति की अमर गाथाः चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग – सात)

माओ के मार्गदर्शन में क्रान्तिकारी लोकयुद्ध की विजय–यात्रा

हमला करती हुई लाल सेना

❶ माओ त्से-तुङ. चीनी क्रान्ति के नेता और सिद्धान्तकार तो थे ही, साथ ही वे विश्व इतिहास में क्रान्तिकारी युद्धों के महानतम सेनापतियों और सामरिक रणनीतिविदों में से एक थे। माओ की पुण्यतिथि (9सितंबर)के अवसर पर प्रकाशित इस किश्त में हम यह बतायेंगे कि माओ के सेनापतित्व में चीन का महान दीर्घकालीन लोकयुद्ध किस प्रकार संगठित हुआ और किस तरह उसने देशव्यापी स्तर पर सत्ता कब्ज़ा करने का मार्ग प्रशस्त किया।

माओ की जनता की इतिहास बनाने की शक्ति में अगाध आस्था थी। यही कारण था कि वे चीन के दबे-कुचले वंचितों – गरीब किसानों और मज़दूरों की, एक महान सेना संगठित करने में सफल रहे जिसने जापानी साम्राज्यवादी हमलावरों के दांत खट्टे करने के साथ ही च्याङ.-काई-शेक की कुओमिंताङ. सरकार की सेना को भी लम्बे संघर्ष के बाद करारी शिकस्त दी, जबकि कुओमिंताङ. के पीछे दुनिया का सबसे ताकतवर साम्राज्यवादी अमेरिका खड़ा था। पीछे हम पढ़ चुके हैं कि माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युन्स्टि पार्टी शक्तिशाली कुओमिंताङ. सरकार के विरुद्ध बरसों लड़ती रही। इस प्रक्रिया में ग़रीब किसानों-मज़दूरों की लाल सेना संगठित हुई जिसने मुक्त क्षेत्रों की स्थापना की। मुक्त क्षेत्रों की हिफाजत के लिए लाल सेना को कुओमिंताङ. के लगातार हमलों के विरुद्ध जबर्दस्त लड़ाइयां लड़नी पड़ीं।

चीनी कैदियों पर संगीन भोंकने की प्रैक्टिस करते जापानी सैनिक

1932 में जापानी साम्राज्यवादियों ने चीन पर आक्रमण करके देश का एक बड़ा हिस्सा कब्जा कर लिया। यूं तो दशाब्दियों से चीन कई साम्राज्यवादी देशों के प्रत्यक्ष-परोक्ष नियंत्रण के क्षेत्रों में बंटा था और उनके दबाव एवं उत्पीड़न का शिकार था, पर अब जापानी उसे सीधे-सीधे उपनिवेश बना लेने पर आमादा था। माओ ने इस नई परिस्थिति में नई रणनीति अपनाई और सामन्तों के विरुद्ध जारी भूमि क्रान्ति की जगह जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध व्यापक संयुक्त मोर्चा बनाकर राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष का आह्वान किया। चीन की जनता का भारी दबाव था कि कुओमिंताङ. सरकार कम्युनिस्टों के विरुद्ध गृहयुद्ध बन्द करे और जापानी साम्राज्यवाद विरोधी मोर्चे में शामिल हो। यहां तक कि कई शीर्षस्थ कुओमिंताङ. नेता भी 'विदेशी हमले के विरोध से पहले कम्युनिस्टों को ठिकाने लगा देने' की च्याङ. की नीति के विरोधी थे। माओ जापान-विरोधी प्रतिरोध युद्ध में कुओमिंताङ. के साथ संयुक्त मोर्चा बनाने के साथ ही इस बात के भी प्रबल आग्रही थे कि मोर्चे के भीतर कम्युनिस्ट पार्टी अपनी राजनीतिक और सामरिक आज़ादी तथा पहलकदमी बनाये रखे।

❷ दिसम्बर, 1936 में एक शीर्षस्थ कुओमिंताङ. जनरल च्याङ. सुएह-ल्याङ. ने 1,70,000 सैनिकों के साथ विद्रोह करके च्याङ. काई-शेक को गिरफ्तार कर लिया। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों ने च्याङ. से भेंट करके कम्युनिस्टों के विरुद्ध हमले बंद करने और जापानी साम्राज्यवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे में शामिल होने की शर्त रखी, जिसे मान लेने के बाद उन्होंने च्याङ. को रिहा करवा दिया।

जापानी साम्राज्यवाद-विरोधी संयुक्त मोर्चे में मज़दूर, किसान और शहरी मध्यवर्ग के अतिरिक्त राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग और देशभक्त भूस्वामियों का एक हिस्सा भी शामिल हुआ। इस राष्ट्रीय क्रान्ति में सभी संभव ताकतों को बाहरी हमलावरों के खिलाफ एकजुट करने के लिए कम्युनिस्ट पार्टी ने कुछ समय के लिए अपनी भूमि-सुधार नीति को कुछ नरम बना दिया और जमींदारों की जमीन जब्त कर… …गह लगान कम करने के लिए किसान-आन्दोलन संगठित किये जाने लगे।

संयुक्त मोर्चे के गठन के बाद लाल सेना औपचारिक तौर पर च्याङ. की रा… सेना का अंग बन गई और उसे "आठवीं राह सेना" कहा जाने लगा। च्याङ. चाहता था कि माओ ला… सेना को भंग करके पूरी तरह कुओमिंताङ. की मातहती स्वीकार कर लें। पर माओ ने इसे स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था, "एक जनसेना के बगैर जनता कुछ नहीं कर सकती।"

❷ माओ त्से-तुङ. येनान में, 1936

❸ जापानी साम्राज्यवाद-विरोधी प्रतिरोध युद्ध में च्याङ. शुरू से ही धोखा और विश्वासघात करता रहा। जापान के विरुद्ध अपनी सेनाओं को लामबंद करने के बजाय, वह मौका पाकर कम्युनिस्टों का ही सफाया करता रहा। ऐसी ही एक घटना में च्याङ. की 50,000 सैनिकों ने माओ की 9,000 की सैनिक टुकड़ी को घेर लिया जिसमें 4,000 लाल सैनिक मारे गये। कई बार कुओमिंताङ. की सेनाओं ने या तो जापानियों से गुपचुप हाथ मिला लिया या फिर उनके आगे सीधे आत्मसमर्पण कर दिया। स्थिति का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि 1944 तक जो 4,25,000 भाड़े के चीनी सैनिक जापानियों की ओर से लड़ रहे थे, उनमें से 60 प्रतिशत कुओमिंताङ. सेना के भूतपूर्व सैनिक और अफसर थे।

जापानियों ने "सबकुछ जला डालो, सबको मार डालो" की मुहिम छेड़ रखी थी, जिसमें कुछ बरसों के दौरान तीन करोड़ चीनियों की हत्या कर दी गई। खास तौर पर उन्होंने माओ की सेनाओं को निशाना बनाया। हर लाल आधार इलाके के चारों ओर 12 मील की पट्टी में सभी पुरुषों को मार डाला गया, स्त्रियों का अपहरण कर लिया गया और घरों-फसलों को जलाकर राख कर दिया गया। 12 दिसंबर 1937 को जापानी सेना ने कुओमिंताङ. की नानकिङ. स्थित राजधानी में प्रवेश किया जहां 4 सप्ताह तक 50,000 चीनी सैनिकों ने जबर्दस्त कत्लेआम किया। तीन लाख लोगों की हत्या कर दी गई जिसमें बच्चे भी शामिल थे। हज़ारों स्त्रियों के साथ बलात्कार किया गया। हज़ारों लोगों को कतारों में खड़ा करके मशीनगनों से भून दिया गया और कैदियों पर संगीनें भोंकने का अभ्यास किया गया। यह युद्ध नहीं बल्कि पागलपन भरा फासिस्ट नरसंहार था जिसका उद्देश्य था चीनी जनता के प्रतिरोध के संकल्प को तोड़कर उन्हें गुलाम बना लेना।

नन्हें लाल सैनिक

येनान में किसानों का आत्मरक्षा दस्ता

काङ.ता विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त स्त्री लाल-सैनिक

❹ इस नरसंहार की जवाबी कार्रवाई के तौर पर माओ ने यह साहसिक निर्देश जारी किया, "हमें दुश्मन के कब्जे के व्यापक इलाके में छापामार युद्ध को फैला देना होगा, उसके पृष्ठ भाग को उसका मोर्चा बना देना होगा और उसे अपने पूरे अधिकृत क्षेत्र में अनवरत युद्ध के लिए मजबूर कर देना होगा।" पार्टी ने पूरे देश में प्रचारकों और राजनीतिक शिक्षकों की टोलियां भेजीं। इन टोलियों ने जनता को संघर्ष के लिए एकजुट किया। लोगों को स्थानीय स्तर पर सत्ता सम्हालने की ट्रेनिंग दी गई। भूस्वामियों को लोकसत्ता की मातहती स्वीकारनी पड़ी। लगान और सूद घटा दिये गये। किसानों के अतिरिक्त बेरोजगार युवाओं और स्त्रियों को भी संगठित और राजनीतिक रूप से सक्रिय किया गया। आत्मरक्षा टोलियां संगठित की गईं और व्यापक शिक्षा कार्यक्रम चलाये गये। माओ ने स्वावलम्बन पर विशेष जोर दिया। जनता और सेना की जरूरतें पूरी करने के लिए व्यापक उत्पादन अभियान चलाये गये।

आठवीं राह सेना के आने की खबर फैलने के साथ ही हज़ारों की तादाद में सैकड़ों मील का फासला तय करके युद्ध में शामिल होने के लिए आने लगे। जापान अधिकृत शहरों से आये छात्र और मज़दूर, यहां तक कि अनाथ बच्चे और भिखारी भी प्रतिरोध दस्तों में संगठित होने लगे। सैनिकों की छोटी-छोटी टुकड़ियां आगे बढ़ते शत्रु के मोर्चों को भेदकर गांवों और घाटियों में फैल गईं। उन्होंने किसानों को प्रशिक्षित करके उनकी जन-मिलिशिया संगठित की। हर नियमित सैनिक टुकड़ी किसानों की मिलिशिया के दस्तों से घिरी होती थी जो दिन में और फसल के सीजन में खेतों में काम करते थे तथा रात में और जब फसल का मौसम नहीं होता था तो युद्ध में भाग लेते थे। मिलिशिया के सर्वोत्तम योद्धाओं और नेताओं को आठवीं राह सेना और कम्युनिस्ट पार्टी में भरती किया जाता था।

(पेज 8 पर जारी)

जनमुक्ति की अमर गाथा: चीनी क्रान्ति की सचित्र कथा (भाग - सात)

(पेज 7 से जारी)

येनान स्थित काङ.ता विश्वविद्यालय में सामरिक रणनीति और रणकौशल पर व्याख्यान देते माओ त्से-तुङ.

❺ उधर कुओमिंताङ. अधिकृत इलाकों में लोग भुखमरी के शिकार थे। जापान के विरुद्ध संघर्ष चलाने के बजाय कम्युनिस्टों से सम्पर्क के सन्देह में लोगों की हत्याएं की जा रही थीं। "चाहे सौ निर्दोष मारे जायें, पर एक कम्युनिस्ट को भी बच निकलने का मौका न मिले" – यह कुओमिंताङ. का नारा था।

माओ ने कुओमिंताङ. अधिकृत क्षेत्रों में लोगों को संगठित करने के लिए छापामार टुकड़ियां भेजीं। स्वयंसेवकों की गुप्त टोलियां संगठित की गई जो रसद इकट्ठा करके उसे मुक्त क्षेत्र में भेजती थीं। कम्युनिस्ट पार्टी के भूमिगत संगठन खड़े किये गये जो केवल तभी खुलकर सामने आते थे जब सुसंगठित स्थानीय टीमें शहरों को मुक्त कराने के लिए उठ खड़ी होती थीं। जापान-अधिकृत क्षेत्रों में भी लाल सैनिकों के छोटे-छोटे दस्ते भीतर तक पैठ जाते थे और जनता को संगठित करने का काम और छापामार कार्रवाइयां चलाते रहते थे।

❻ माओ के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी की लाल सेना जापानी आक्रान्ताओं को छापामार युद्ध में थका रही थी और आमने-सामने की लड़ाई में भी उनके दांत खट्टे कर रही थी। च्याङ. काई-शेक अपने सैनिकों और हथियारों को बचा रहा था ताकि कम्युनिस्टों से निपट सके। दूसरी ओर, माओ की सेनाओं ने 1937 से 1945 के बीच जापानियों के विरुद्ध 75 प्रतिशत लड़ाइयां (लगभग 92,000 लड़ाइयां) लड़ीं। इस दौरान उन्होंने लगभग दस लाख दुश्मन सैनिकों का सफाया किया, 1 लाख 50 हजार को बन्दी बनाया तथा 3 लाख 20 हजार राइफलों, 9,000 मशीनगनों और 600 तोपों को उनसे छीन लिया।

क्वोमिनताङ. सरकार बड़ी हठधर्मी के साथ गृहयुद्ध व तानाशाही की नीति के परिणामस्वरूप क्वोमिनताङ. शासित क्षेत्रों में मेहनतकश जनता को भुखमरी का सामना करना पड़ा।

टिन के डिब्बों, बोतलों और चाय की केटलियों से विस्फोटक सुरंगे बनाते किसान

❼ इतिहास के बर्बरतम हमलावरों में से एक के विरुद्ध अभूतपूर्व रूप से लम्बा एवं कठिन संघर्ष चलाते हुए और मुक्त क्षेत्रों में लोक-सत्ता की स्थापना का अनूठा युगान्तरकारी प्रयोग चलाते हुए माओ ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व और कतारों के राजनीतिक शिक्षण-प्रशिक्षण के काम पर विशेष जोर दिया और उसे लगातार स्वयं अपने नेतृत्व में जारी रखा। उन्होंने काफी समय लगाकर और मेहनत करके दर्शनशास्त्र (द्वंद्ववाद), सामरिक मामलों (रणनीति और रणकौशल), अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र का पूरा पाठ्यक्रम लिखकर तैयार किया। उन्होंने कहा, "कोई भी राजनीतिक पार्टी किसी महान क्रान्तिकारी आन्दोलन को नेतृत्व देती हुई विजय तक नहीं ले जा सकती जबतक कि क्रान्तिकारी सिद्धान्त और इतिहास की जानकारी पर उसका अधिकार न हो तथा व्यावहारिक आन्दोलन पर उसकी गहरी पकड़ न कायम हो।" 1936 में माओ ने येनान के आधार-क्षेत्र में पार्टी नेताओं के लिए प्रसिद्ध काङ.ता विश्वविद्यालय की स्थापना की। वहां माओ ने स्वयं कई व्याख्यान दिये। अगले सात वर्षों के दौरान काङ.ता में 1,00,000 क्रान्तिकारियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

(पृष्ठ 9 पर जारी)

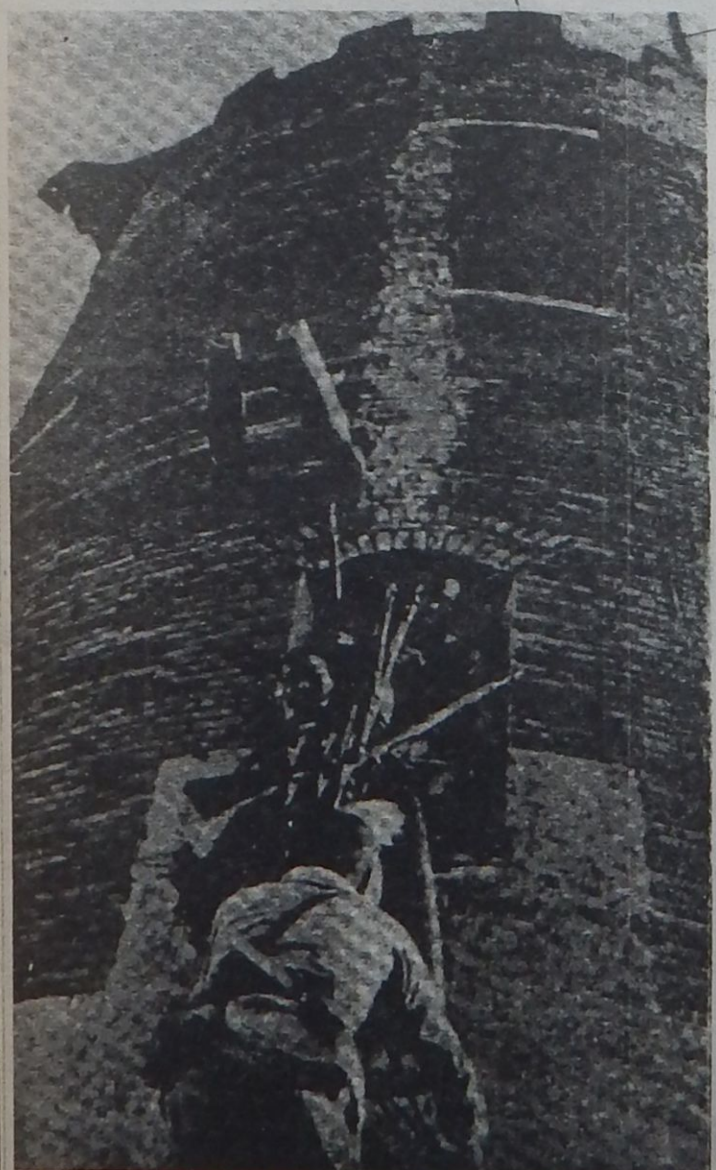

❶ जापानी किले पर कब्जे से मिले लोकयुद्ध के लिए हथियार

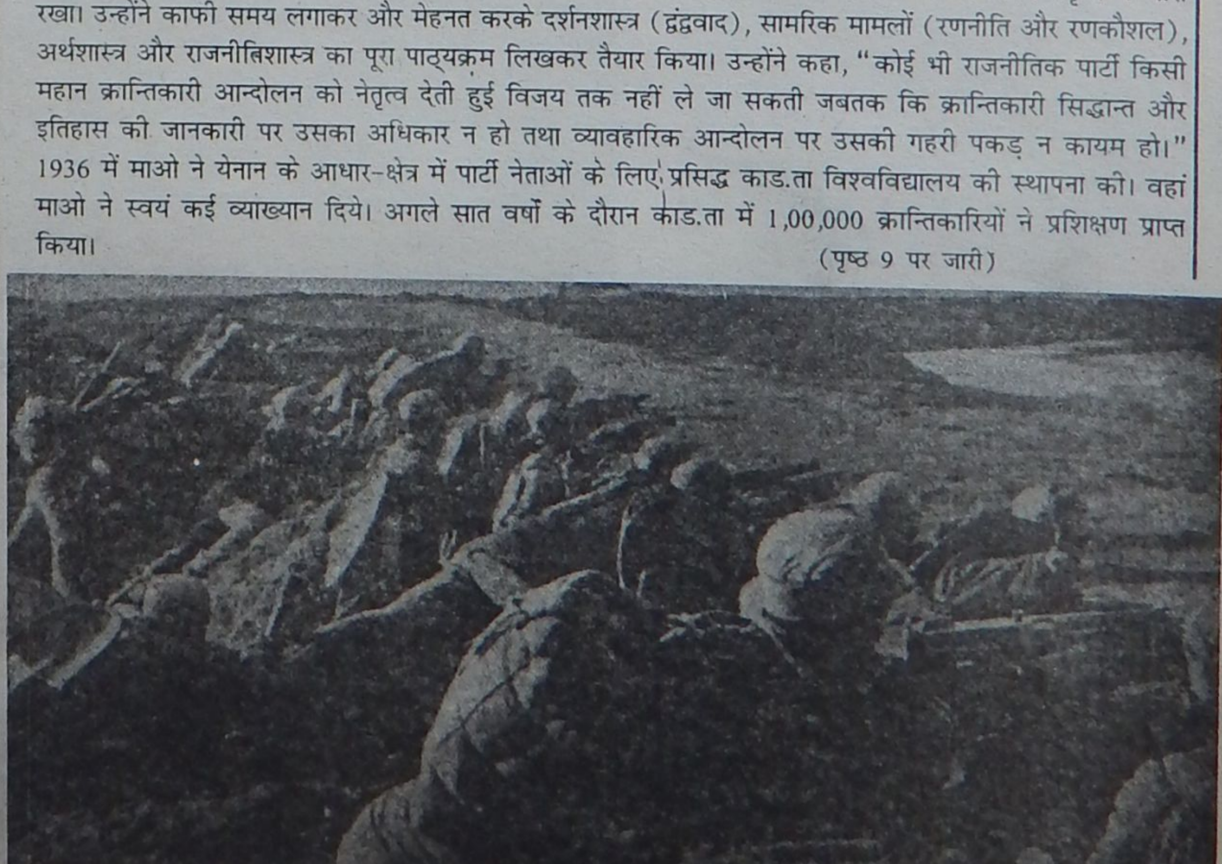

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में नई चौथी सेना की एक इकाई जापानी आक्रमणकारियों के एक कॉलम को जापान-विरोधी युद्ध (1937-1945) के दौरान रोकते हुए

माओ के मार्गदर्शन में क्रान्तिकारी लोकयुद्ध की विजय-यात्रा

(पेज 8 से जारी)

माओ त्से-तुङ. 28 अगस्त 1945 को क्वोमिनताङ. सरकार से समझौता-वार्ता चलाने के लिए विमान द्वारा छुङ.छिङ. गए।

20 मई 1946 को पेईफिङ. के जनसमुदाय ने एक चीनी छात्रा का अपमान करने वाले अमरीकी सैनिकों के खिलाफ एक जुलूस निकाला।

क्वोमिनताङ. सरकार अपने फासिस्टवादी शासन को मजबूत बनाने के लिए अक्सर मनमाने ढंग से प्रगतिशील व्यक्तियों को गिरफ्तार करके उन्हें मृत्यु दण्ड दे देती थी।

8 विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियां, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका, च्याङ. काई-शेक की मदद कर रही थीं। 1945 में जब जापान पराजित हुआ और दूसरा विश्वयुद्ध समाप्त हुआ तो अमेरिका यह सुनिश्चित कर लेना चाहता था कि जापान अधिकृत क्षेत्रों पर कम्युनिस्टों के बजाय कुओमिंताङ. काबिज हो जाये। च्याङ. ने आदेश दिया कि लाल सेना कोई भी जापानी आत्मसमर्पण स्वीकार न करें। फिर अमेरिका की मदद से पूरे चीन में रणनीतिक महत्व के स्थानों पर हवाई और समुद्री रास्ते से पहुंचाकर 5 लाख कुओमिंताङ. फौजों को तैनात कर दिया गया। और कुओमिंताङ. के लिए मुख्य शहरों पर कब्जा करने के लिए तथा बंदरगाहों, हवाई अड्डों, संचार केन्द्रों, रेलमार्गों और कोयला खदानों की हिफाजत करने के लिए 90 हज़ार अमेरिकी सैनिकों को भेज दिया गया। अमेरिका ने च्याङ. को बड़े पैमाने पर आधुनिक हथियार और वाहन मुहैया कराये और अमेरिकी सलाहकारों ने कुओमिंताङ. अफसरों को ट्रेनिंग दिया। अगले दो वर्षों के भीतर साजो-सामान और कर्ज के रूप में च्याङ. के अमेरिका से डेढ़ अरब डालर की सहायता प्राप्त हुई।

तब माओ ने कहा, "च्याङ. अपनी तलवार तेज कर रहा है, हमें अपनी तेज करनी चाहिए।" उन्होंने ग्रामीण आधार-इलाकों की स्थापना का आहवान किया, और लाल सैनिकों ने 197 छोटे शहरों पर अपना कब्जा कायम कर लिया। माओ चुङ. किङ. गये और च्याङ. से इसके लिए वार्ता की कि अधिकांश मुक्त क्षेत्र सुरक्षित बने रह सकें। लेकिन च्याङ. ने कम्युनिस्ट पार्टी और मुक्त क्षेत्रों की सत्ताओं को कानूनी तौर पर मान्यता देने से इंकार कर दिया। वह उस समय अपने को मजबूत स्थिति में महसूस कर रहा था। अमेरिकी मदद से उसने उत्तर के अधिकांश शहरों पर फिर से अपना कब्जा जमा लिया। 1946 के मध्य में च्याङ. ने फिर से कम्युनिस्टों के खिलाफ पूरी ताकत लगाकर, नये सिरे से धावा बोल दिया। क्रान्तिकारी गृहयुद्ध की शुरूआत हो गई। माओ त्से-तुङ. ने कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में काम करने वाली लाल सेना की टुकड़ियों का नया नाम रखा – जन मुक्ति सेना।

येनान में चू ते व अमेरिकी दूत जनरल जार्ज सी. मार्शल के साथ। मार्शल उस "तीन व्यक्तियों की कमेटी" में से एक थे, जिसे छुङ.छिङ. समझौते के अनुसार विरामसंधि के परिपालन का परिनिरीक्षण करना था।

अगले अंक में पढ़िये: कठिन गृहयुद्ध में माओ के नेतृत्व में जनमुक्ति सेना ने च्याङ. की साधन शक्ति सम्पन्न सेना को धूल चटाई और अमेरिकी साम्राज्यवादियों को उनकी औकात बताई। एशिया के क्षितिज पर नये सूर्य का रक्तिम आलोक। चीन लोक-गणराज्य की स्थापना।

पूर्वांचल के किसानों-मजदूरों को चुनावी मसीहाओं की नहीं क्रान्तिकारी नेतृत्व की जरूरत

(पेज 1 से जारी)
भाजपा सरकार का कारनामा। पूर्वांचल की जनता अब यह समझ चुकी है कि गैर भाजपा विपक्षी नेताओं का यह अचानक उमड़ा हुआ प्रेम और जंगी तेवर खून की नदी में चुनावी नैया पार लगाने की नीयत से रचा गया स्वांग है।

मसला चाहे पडरौना का हो, सरदारनगर का या गोरखपुर-बस्ती मण्डल की बन्द पड़ी ग्यारह चीनी मिलों में से किसी भी मिल का, क्या ये सभी पार्टियां और उनके नेता अब तक हालात से अनजान थे? सच्चाई यह है कि चाहे मौजूदा सरकार हो या कोई भी चुनावी विपक्षी पार्टी, पूर्वांचल की चीनी मिलों, उसके मजदूरों एवं गन्ना किसानों की तबाही-बर्बादी के रास्ते सबने मिलकर तैयार किये हैं। पूर्वांचल की चीनी मिलें और उनसे जुड़े किसान-मजदूर आज निजीकरण-उदारीकरण की उन्हीं विनाशकारी नीतियों के शिकार हैं, जिनसे पूरे देश में किसान-मजदूर और आम मेहनतकश जनता तबाही के खड्ड में धकेल दी गयी है और पूरे देश में आवाज उठाने पर लाठियां-गोलियां खा रही हैं। पडरौना के गन्ना किसानों-मजदूरों की पीड़ाओं पर आंसू बहाने वाली पार्टियों की अन्य प्रदेशों में काबिज सरकारें क्या इन नीतियों को उतनी ही मुस्तैदी से नहीं लागू कर रही हैं, जितनी उत्तर प्रदेश की और केन्द्र की भाजपा गठबन्धन सरकारें?

पडरौना चीनी मिल – दुर्भाग्य की एक लम्बी कहानी

पडरौना चीनी मिल और उससे जुड़े मजदूरों-किसानों के दुर्भाग्य की कहानी पर एक सरसरी नजर डालने से ही यह बात साफ हो जाती है कि मौजूदा भाजपा सरकार के साथ ही अन्य सभी गैर भाजपा पार्टियां भी पडरौना के किसानों के खून से अपना दामन साफ नहीं कर सकतीं।

गोरखपुर-बस्ती मण्डल की अधिकांश चीनी मिलों की तरह पडरौना चीनी मिल भी अंग्रेजी राज में, 1932 में खुली थी। अंग्रेजों ने इस मिल से अकूत मुनाफा बटोरा। 1947 के बाद यह मिल ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन (बी.आई.सी.)के अधीन कम्पनी कानपुर शुगर वर्क्स के स्वामित्व में रहते हुए दो दशकों तक मुनाफा देती रही, लेकिन धीरे-धीरे मशीनों के पुराने पड़ने के नाते उत्पादकता में कमी आती गयी। मिल जर्जर होती गयी। मिल को बचाने का एक ही तरीका था कि मशीनों का नवीनीकरण किया जाता और इसकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाया जाता। लेकिन, इस दिशा में किसी भी सरकार ने प्रयास नहीं किया, उल्टे मिल की सम्पत्ति को ही अधिकारी, मंत्री, सांसद-विधायक व ट्रेडयूनियन नेता लूटते खसोटते रहे। किसानों की पर्चियों का भुगतान व मजदूरों के वेतन-भत्तों का भुगतान अटकाने की प्रक्रिया शरू हुई।

अस्सी के दशक में पूर्वांचल की अधिकांश चीनी मिलों की तरह पडरौना चीनी मिल को भी अन्तिम सांस लेने की स्थिति में पहुंचा दिया गया। किसानों-मजदूरों के खून-पसीने की लूटखसोट किस ढंग से होती रही, इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त है। 1984-85 में तत्कालीन मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी के कार्यकाल में पडरौना चीनी मिल से चार करोड़ रुपये निकालकर वरिष्ठ कांग्रेसी नेता दिनेश सिंह को कालाकांकर में एक मिल खोलने हेतु दिया गया था। मिल तो खुली नहीं, अलबत्ता उसके नाम पर 30-40 एकड़ ऊसर भूमि आज भी पड़ी हुई है। जबकि, इसी अवधि में मिल की चीनी रिकवरी सिर्फ दो प्रतिशत होने के कारण मिल 11 करोड़ रुपये का घाटा झेल रही थी। किसानों के भुगतान का हल्ला मचने पर राजीव गांधी ने प्रधानमंत्री कोष से चेक देकर भुगतान का नाटक किया, जबकि असलियत यह थी कि यह आर्थिक बोझ भी अन्ततोगत्वा मिल के सिर पर ही आ पड़ा। एक अन्य तथ्य भी गौरतलब है। पडरौना चीनी मिल के प्रबन्ध निदेशक के पद पर तमाम कांग्रेसी नेता और 'इण्टक' नेता काम कर चुके हैं। इनके कार्यकाल में भी मिल लगातार बदहाली की ओर बढ़ती रही। सिर्फ इन्हीं उदाहरणों से स्पष्ट है कि सोनिया गांधी की अगुवाई में कांग्रेसियों द्वारा पडरौना काण्ड के सवाल पर हल्ला मचाना निरी बेहयाई के सिवा कुछ नहीं है।

लूटखसोट के अन्तहीन सिलसिले का नतीजा यह हुआ कि नब्बे का दशक आते-आते पडरौना चीनी मिल की आखिरी सांसे भी उखड़ गयीं। उधर 1991 में नरसिंहराव-मनमोहन सिंह मण्डली वाली कांग्रेसी सरकार उदारीकरण-निजीकरण के नये दौर की नई आर्थिक नीतियों को लागू करने की शुरुआत भी कर चुकी थी। सार्वजनिक क्षेत्र के तमाम उद्योगों को निजी पूंजीपतियों के हाथों औने-पौने दामों बेचने की नीयत से बीमार घोषित किया जाने लगा। पडरौना चीनी मिल भी इसी उदारीकरण-निजीकरण कुचक्र की शिकार हुई। 1992 में मिल को बीमार घोषित कर पहले बी.आई एफ.आर. (औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड) के हवाले किया गया। बोर्ड ने अधिकांश मामलों की तरह पडरौना मिल को लाइलाज घोषित कर बन्द करने का आदेश दे दिया।

मिल की बन्दी के बाद उसके खरीदारों से सौदा पटने में कुछ समय गुजरा और आखिरकार बी.आई.एफ.आर. की कुछ शर्तों के साथ कानपुर शुगर वर्क्स की पडरौना, कठकुंइयां और गौरीबाजार की तीन चीनी मिलें 12 जनवरी 1999 को गंगोत्री इण्टरप्राइजेज के नये मालिकान के हाथ लगी। वर्तमान सरकार के काबीना मंत्री हरिशंकर तिवारी के ज्येष्ठ पुत्र भीष्म शंकर तिवारी गंगोत्री इण्टरप्राइजेज के प्रबन्ध निदेशक हैं। नये मालिकान के हाथ में आने के समय मिल पर किसानों की कुल देनदारी 13 करोड़ रुपये और भविष्य निधि के खातों सहित मजदूरों की कुल देनदारी 8 करोड़ रुपये थी। सरकार के मुताबिक इन देनदारियों को नये मालिकान को चुकाना था। लेकिन मिल के नये मालिकानों का यह कहना है कि बी.आई.एफ.आर. के साथ समझौतों में सरकार और बैंक को मिल चलाने के लिए जो सहयोग करना था, वह नहीं मिला। इसलिए, जब मिल चल ही नहीं सकी तो फिर पुरानी देनदारियां कैसे चुकायी जा सकती हैं। वजह जो भी हो, सरकार, बी.आई.एफ.आर. और नये प्रबन्ध तंत्र के दांव घात, थुक्का-फजीहत का खामियाजा किसानों-मजदूरों को ही भुगतना पड़ रहा है।

1992 में कल्याण सिंह सरकार द्वारा मिल को बीमार घोषित कर बी.आई.एफ.आर. को दिये जाने के बाद गंगोत्री इण्टरप्राइजेज के हाथ में आने की अवधि के बीच मुलायम सिंह यादव और मायावती की सरकारें भी प्रदेश की बागडोर सम्हाल चुकी हैं, लेकिन उस दौरान किसी सरकार ने पडरौना या किसी भी चीनी मिल का उद्धार करने के लिए कुछ करने के बजाय मिल को बेचने की जुगत में ही रहीं। इसलिए, आज किसी भी गैर-भाजपा दल को पडरौना के किसानों-मजदूरों के दुख पर छाती पीटने का भी नैतिक अधिकार नहीं बचा है।

29 अगस्त को फूट पड़ा एक अर्से से जमा हो रहा आक्रोश

जाहिर है कि 29 अगस्त को दसियों हजार किसान-मज़दूर, छात्र और आम नागरिक अचानक ही पडरौना की सड़कों पर नहीं उतर आये थे। बकाया न मिलने से आक्रोश लम्बे समय से जमा होता जा रहा था। नकदी के लिए गन्ने की पर्चियों के भुगतान से मिलने वाली रकम ही छोटे-मझोले गन्ना किसानों का एकमात्र सहारा था। पढ़ाई-लिखाई-दवाई से लेकर शादी-विवाह, तीज-त्यौहार के लिए ये किसान मुख्यत: गन्ने की कमाई पर ही निर्भर थे। दस-बारह वर्षों से भुगतान लटकने और दिनोंदिन बढ़ती मंहगाई से किसानों की कमर टूट चुकी थी। उधर मिल मजदूरों की तनख्वाहें और अन्य भुगतानों के लटकते जाने से भुखमरी की स्थिति पैदा होती जा रही थी। दुकानदारों ने उधारी देना तक बन्द कर दिया था। किसान-मजदूर चुनावी घड़ियालों के दिखावटी आंसुओं को बखूबी समझ चुके थे। जब मिल के नये मालिकानों से भी निराशा ही हाथ लगी तो बेबसी और नाउम्मीदी के चरम पर पंहुचकर किसानों-मजदूरों ने स्वयं फैसलाकुन लड़ाई लड़ने की शुरुआत की।

मिल गेट पर विगत 16 अगस्त से मजदूर धरने पर बैठ गये। 22 अगस्त को धरना स्थल पर ही प्रेमानन्द उर्फ नागा बाबा नामक एक साधु ने आमरण अनशन शुरू कर दिया। इसके साथ ही 29 अगस्त को चक्का जाम आन्दोलन घोषित कर आसपास के गांवों में व्यापक प्रचार एवं सम्पर्क शुरू कर दिया गया था। जिला प्रशासन को भी इस कार्यक्रम की इत्तला दे दी गयी थी।

बिना किसी चुनावी पार्टी की अगुवाइ में चल रहे किसानों-मजदूरों के इस आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन मिलता जा रहा था। 29 अगस्त के दिन पडरौना के व्यापारियों ने भी अपनी दुकानें बन्द कर आंदोलन को अपना समर्थन दिया था। पहले से तय कार्यक्रम के अनुसार छुछिया मिल गेट पर दस हजार से अधिक लोग इकट्ठा होकर जुलूस की शक्ल में तिलक चौक, कोतवाली होते हुए चौक की ओर बढ़ रहे थे, जब रेलवे क्रासिंग के पास उग्र भीड़ को तितर-बितर करने के नाम पर पुलिस-पी.ए.सी. का ताण्डव शुरू हुआ। लाठी चार्ज, आंसू गैस, रबर की गोलियों की बौछारों के बाद बिना पूर्व चेतावनी के फायरिंग शुरू हो गयी। फायरिंग में एक पन्द्रह वर्षीय किशोर भुल्लन की मृत्यु हुई और दर्जनों घायल हुए। पुलिस के अनुसार सिर्फ 30 राउण्ड गोलियां चलीं, जबकि लोगों का कहना है कि गोलियों की बरसात हो रही थी, जो अंग्रेजी राज की याद दिला रही थी।

पडरौना में फायरिंग की खबर सुनकर कठकुइयां में भी रेलवे स्टेशन पर आंदोलन के समर्थन में सभा कर रहे लगभग तीन हजार मजदूरों-किसानों ने गुस्से में स्टेशन पर खड़ी 252 डाउन सवारी गाड़ी के छह डिब्बों में आग लगा दी। पूरे क्षेत्र की जनता आक्रोश में उबलकर सड़कों पर निकल पड़ी, जिसे शान्त करने की कोशिश में जिला प्रशासन ने दोपहर एक बजे से ही कर्फ्यू की घोषणा कर दी जो तीन सितम्बर को जाकर खत्म हुआ।

गोलीकाण्ड के पहले तक सभी विपक्षी दलों के नेता अपनी-अपनी बिलों में घुसे हुए थे, लेकिन घटना के बाद लाशों पर सियासत करने के लिए उनका हुजूम उमड़ पड़ा। आगामी विधानसभा चुनावों के ऐन पहले इतना "शानदार मुद्दा" जो उन्हें मिल गया था!

पूर्वांचल की सभी चीनी मिलों की एक ही दास्तान

विपक्षी दलों के नेताओं की सिंह गर्जनाओं और भाजपा सरकार के लाज बचाऊ कवायदों के बीच फिलहाल पडरौना चीनी मिल के किसानों-मजदूरों की बर्बादी एक सियासी तमाशा बनी हुई है। पडरौना ही नहीं **गोरखपुर-बस्ती मण्डल की कुल 26 चीनी मिलों में से 11 बन्द पड़ी हुई हैं, जिन पर किसानों-मजदूरों को करोड़ों रुपये बकाया है।** पडरौना मिल पर किसानों का 13 करोड़ रुपये और मजदूरों का कुल .0 करोड़ रुपये बकाया है। कुल मिलाकर **बन्द चीनी मिलों पर किसानों का 85 करोड़ रुपये और मजदूरों का 20 करोड़ रुपये बकाया है।** इसके अतिरिक्त घुघली, आनन्दनगर, छितौनी-खड्डा और मुण्डेरवा चीनी मिलें भी बन्द पड़ी हैं। इसके साथ ही कुछ वर्षों पूर्व खुली सहकारी चीनी मिल धुरियापार को भी विगत 22 अगस्त को बन्द करने के आदेश दे दिये गये हैं। **बन्द चीनी मिलों में कार्यरत कुल 11 हजार से अधिक मजदूर बेकार हो चुके हैं।** बन्द चीनी मिलों को चालू करवाने के लिए मजदूर लगातार संघर्षरत हैं, लेकिन देशी-विदेशी पूंजीपतियों की सेवा में जुटी सरकार भला इन पर कान क्यों दे?

विकल्पहीनता की त्रासदी

पूर्वांचल के गन्ना किसान और चीनी मिल मज़दूर पूरे देश के किसानों-मज़दूरों की तरह ही विकल्पहीनता की त्रासदी के शिकार हैं। चुनावी पार्टियों के नेताओं ने समय-समय इनकी समस्याओं को कुरेदकर भरपूर राजनीतिक लाभ बटोरा है। कई नेता इनकी समस्याओं पर सिर्फ जुबानी जमा खर्च करने और संघर्ष के नाम पर कुछेक कवायदें करने के एवज में विधायक, सांसद और मंत्री तक बन चुके हैं। ट्रेड यूनियन नेता भी 'मज़दूर एकता जिन्दाबाद' की दुहाई देते-देते मालामाल हो चुके हैं, किन्तु किसानों-मज़दूरों की जिन्दगी बर्बादी-दर-बर्बादी के सफर पर ही चलती रही है। आज गन्ना किसान और मिल मज़दूर पूरी तरह हताश और नाउम्मीद हो चुके हैं। हताशा की इसी हालत में पिछले 15 अगस्त को सरदारनगर चीनी मिल के मज़दूर सामूहिक आत्मदाह का प्रयास भी कर चुके हैं। विकल्पहीनता आज इनके सामने सबसे बड़ी त्रासदी बन चुकी है।

पूर्वांचल के गन्ना किसानों-मज़दूरों की आज चल रही ये छिटपुट और बिखरी हुई लड़ाइयां निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के विरोध में लड़ी जा रही लड़ाइयां हैं। ये लड़ाइयां चुनावी मसीहाओं से ऊबे हुए किसानों-मज़दूरों द्वारा मुख्यत: अपने दम पर लड़ी जाने वाली लड़ाइयां हैं। दुर्भाग्य की बात यह है कि किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व के अभाव में ये लड़ाइयां समूचे पूर्वांचल स्तर पर एकजुट लड़ाइयों में नहीं बदल पा रही हैं और अलग-अलग लड़ी जा रही इन लड़ाइयों का भविष्य हताशा के सिवा और कुछ नजर नहीं आता। यह एक निर्मम सच है।

इस क्षेत्र में सक्रिय क्रान्तिकारी शक्तियों की संगठनात्मक शक्ति अभी इतनी नहीं है कि वे आगे बढ़कर नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ में ले सकें। जबकि, हालात विस्फोटक होते जा रहे हैं। चुनावी मसीहाओं से लोग ऊब चुके हैं। किसान-मज़दूर किसी क्रान्तिकारी नेतृत्व के साथ चलने के लिए तैयार बैठे हैं। यदि निकट भविष्य में इस दिशा में कोई पहलकदमी भी होती है तो आगे चलकर पूर्वांचल के किसानों-मज़दूरों के संघर्ष को एक दीर्घकालिक संघर्ष की दिशा में और सही क्रान्तिकारी संघर्ष की दिशा में मोड़ा जा सकता है। लेकिन, यदि पहलकदमी नहीं ली जा सकी तो आगे इन लड़ाइयों को नये सिरे से संगठित करना क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए और भी कठिन और चुनौतीपूर्ण होता जायेगा।

'योर ऑनर' हम अच्छी तरह जानते हैं ...

(पेज 1 से जारी)
में दलील देते हुए सुप्रीम कोर्ट की उस व्यवस्था का जिक्र किया था जिसमें कहा गया है कि राज्य न्यायिक सेवा से जुड़े उन न्यायिक अधिकारियों को 60 वर्ष की आयु तक सेवा में रखा जा सकता है, जिन्हें उड़ीसा हाईकोर्ट सेवा में बने रहने योग्य समझता है।

इस मामले में आचार्य की याचिका खारिज करते हुए खण्डपीठ ने कहा कि सरकार को इस सवाल पर विचार करना चाहिए कि क्या हम ऐसे मुकाम पर नहीं पहुंच गये हैं जब सरकारी एवं अर्द्धसरकारी कर्मचारियों की सेवाओं को इस तरह से नियमित किया जाये कि केवल वही व्यक्ति सेवा में रहे जो उपयोगी हो न कि वह जो अनुपयोगी, अक्षम एवं संदिग्ध चरित्र का हो।

हमें न्यायमूर्ति की विद्वता, विवेक और न्यायिक कार्य के प्रति उनकी निष्ठा में कोई सन्देह नहीं है। न ही हम न्यायपालिका के प्रति कोई अनादर प्रकट करने की मंशा रखते हैं। लेकिन, हम इस वाजिब आशंका को प्रकट करने से खुद को नहीं रोक पा रहे हैं कि क्या यह फैसला सरकारी एवं अर्द्धसरकारी प्रतिष्ठानों के कर्मचारियों की मनमानी छंटनी के लिए एक न्यायिक औचित्य नहीं प्रदान करता?

कर्मचारियों की उपयोगिता, सक्षमता और उनकी निष्ठा का मूल्यांकन कैसे होगा? जाहिर है हमारी नौकरशाही प्रणाली में मूल्यांकन की ऐसी जनतांत्रिक प्रणाली की उम्मीद नहीं की जा सकती कि किसी कर्मचारी की उपयोगिता, सक्षमता एवं निष्ठा के बारे में सही मूल्यांकन हो सके। जो कर्मचारी अफसरों की जी हुजूरी करेगा, सरकार के हर गलत-सही निर्णय को सिर झुकाकर स्वीकार कर लेगा, आन्दोलन-हड़ताल से दूर रहेगा, जाहिर है सरकार की नज़र में वहीं उपयोगी और सक्षम होगा। उसी की निष्ठा सन्देह से परे होगी। अफसरों की उल्टी-सीधी मांगों और सनकों पर एतराज करने वाले, सरकार के कर्मचारी एवं जनविरोधी फैसलों के खिलाफ आवाज उठाने वाले, न्याय के पक्ष में खड़े होने वाले कर्मचारी अनुपयोगी व अक्षम करार दिये जायेंगे। ऐसे ही स्वाभिमानी एवं न्यायप्रिय कर्मचारियों की निष्ठा सन्देह के दायरे में होगी जबकि चापलूसों, कामचोरों की बन आयेगी।

केन्द्र एवं राज्य के सभी सरकारी अर्द्धसरकारी विभागों में पचास वर्ष से ऊपर के कर्मचारियों की सूचियां पहले से ही बन रही हैं। अब सुप्रीम कोर्ट की सलाह के अनुसार सरकार अपनी मनमाफिक परिभाषा एवं मानक गढ़कर अनुपयोगी, अक्षम एवं संदिग्ध चरित्र वाले कर्मचारियों की सूचियां भी तैयार होनी शुरू हो जायेंगी।

फैसला सुनाते समय बेहतर प्रशासन के लिए उपयोगी, सक्षम एवं निष्ठावान कर्मचारियों की जो भी परिभाषा विद्वान न्यायाधीशों के जेहन में रही हो, लेकिन व्यावहारिक रूप में इसका क्या अर्थ निकलने वाला है, 'योर ऑनर'! हम इसके बारे में अपने तजुर्बे से अच्छी तरह जानते हैं।

क्रांतिकारी वामपंथी आन्दोलन की समस्याएं : एक बहस

अन्तरविरोधों को नजरअंदाज करने से एकता नहीं कायम होगी

साथी पी.आर. हरणे ने 'बिगुल' मई, 2000 अंक में बहस के लिए "बदली हुई विश्व परिस्थितियों में क्रांति के स्तर-निर्णय का प्रश्न" शीर्षक से एक लेख दिया है। साथी के इस लेख पर मेरे भी कुछ विचार प्रस्तुत हैं-

'क्रांति का स्तर अथवा लाइन का सवाल और मार्क्सवाद' जैसा मुद्दा उठाकर साथी हरणे ने कम्युनिस्ट खेमों में उनके प्रति उभरे विभ्रम को साफ करने का अच्छा अवसर प्रदान किया है। मार्क्स के समय में क्रांति के स्तर अथवा लाइन का सवाल आज जैसा बेशक नहीं था, इसे माना जा सकता है, लेकिन जैसा भी था वह कम महत्वपूर्ण नहीं था। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उस समय क्रांति का स्तर या लाइन का सवाल ही नहीं था। यदि उस समय क्रांति के स्तर अथवा लाइन का सवाल नहीं होता तो एक विकसित देश में मार्क्स समाजवादी क्रांति की ही बात क्यों सोचते? उन्होंने जनवादी, नवजनवादी क्रांति की बात क्यों नहीं सोची? इसीलिए न कि जहां वे क्रांति का प्रयास कर रहे थे, वे पिछड़े व अविकसित देश नहीं विकसित पूंजीवादी देश थे। शोषण पूंजीवादी था। क्रांति के स्तर अथवा लाइन का सवाल उतना ही पुराना है जितना मार्क्सवाद। अब यह अलग बात है कि जब जहां की जैसी परिस्थितियां होती हैं क्रांति के स्तर अथवा लाइन उसके अनुसार तय की जाती है। लासाल पंथियों, समाजवादियों आदि समसामयिकों को लिखे गये मार्क्स के पत्र इसी आशय से अटे पड़े हैं। इसके बारे में सही निर्णय के बगैर कम्युनिस्टों और गैर कम्युनिस्टों की सही पहचान असंभव है। यदि क्रांति के स्तर अथवा लाइन का सवाल क्रांति में प्रमुख नहीं होता तो लेनिन को इसके बाबत इतनी वर्जिश करने की कोई जरूरत नहीं होती। तब बोल्शेविक-मेन्शेविक का वितण्डा भी खड़ा नहीं होता।

अच्छी बात थी कि लाइन के सवाल पर कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं में लम्बी और तीखी बहसें हुआ करती थीं। आज बहसें नहीं चलायी जा रही हैं यही खतरा है। लेकिन बहस क्रांतिकारी लाइन को स्थापित करने के लिए चलाया जाये न कि बहस सिर्फ बहस के लिए। यदि बहस सिर्फ बहस के लिए चलायी गयी तो समझिए यह बहस न चलाने से भी खतरनाक है।

साथी हरणे एक तरफ तो सत्ताधारियों के चरित्र निरूपण की बात करते हैं और दूसरी तरफ अगले ही पैरे में लिखते हैं कि सत्ता के संचालक सत्ताधारी वर्ग को सामंती कहें, साम्राज्यवादियों का दलाल कहें अथवा पूंजीवादी, इस सवाल पर क्रांतिकारियों के इतने गुटों में विभाजन की क्या सार्थकता है? इस पर साथी से यही जानना चाहूंगा कि तब सत्ताधारियों के चरित्र निरूपण की क्या सार्थकता है, जबकि सामंती, साम्राज्यवादी दलाल, पूंजीवादी सत्ताधारियों में कोई फर्क ही नहीं है? सत्ता को सामंती मानने वाले साम्राज्यवादी दलाल मानने वाले और पूंजीवादी मानने वाले गुटों की अलग-अलग रणनीति भी होगी। फिर क्रांतिकारी गुटों में विभाजन क्यों नहीं होगा? इसीलिए तो सत्ताधारियों के चरित्र निरूपण की सार्थकता है। भारत जैसे देश में इन तीनों-चारों चरित्रों में से कोई एक ही चरित्र हो सकता है और उसके खिलाफ सटीक रणनीति भी एक ही हो सकती है। जब क्रांतिकारी गुटों द्वारा अलग-अलग चरित्र निरूपण किया जायेगा तो अलग-अलग रणनीति के चलते क्रांतिकारी गुटों में विभाजन होगा ही। इसे किसी सदिच्छा से नहीं रोका जा सकता। सत्ताधारियों के सही चरित्र निरूपण द्वारा एक रणनीति पर क्रांतिकारी गुटों को लाकर ही संघर्ष का साझा मोर्चा बनाया जा सकता है। इसके पहले वह मंच होना चाहिए जहां पर अलग-अलग गुटों के अलग-अलग अटकलों को एक सही रणनीति पर पुख्ता किया जा सके। इस मतभेद से मजदूरों, किसानों, मेहनतकशों के आन्दोलन में आने वाली रुकावटों को लेकर चिन्तित रहने से कुछ नहीं होने वाला है।

साथी हरणे नवजनवादी और समाजवादी क्रांति के बीच कोई चीन की दीवार नहीं देखते। एक अर्थ में यह बात ठीक है। लेकिन लगता है कि साथी किसी दूसरे अर्थ में यह बात कह रहे हैं। जनवादी क्रांति से नवजनवादी क्रांति का भिन्न स्वरूप है और जनवादी क्रांति और नवजनवादी क्रांति से समाजवादी और नई समाजवादी क्रांति का स्वरूप निश्चित ही भिन्न है। साथी, चीन की दीवार ढाही जा सकती है, लेकिन यदि 'क्रांति करनी है तो जनवादी, नवजनवादी, समाजवादी, नई समाजवादी क्रांतियों की भिन्नता को सपाट नहीं किया जा सकता। "चीनी क्रांति के बाद से ही और खास करके माओवादियों द्वारा नवजनवादी क्रांति में ही किसानों की भूमिका स्वीकारने और समाजवादी क्रान्ति में नकारने की रही हैं," साथी पी.आर. हरणे का यह आकलन मुझे कुछ अटपटा लग रहा है। माओवादी क्यों कहने लगे कि समाजवादी क्रांति में किसानों की भूमिका नहीं होती? अध्यक्ष माओ अधिकतम किसानों को ही लेकर महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति और समाजवाद की स्थापना की ओर बढ़ रहे थे।

अपने देश में जिसे हम मध्यम और निम्न क़िसान कह रहे हैं, वे वास्तव में अब खेतिहर मजदूर बनते जा रहे हैं। आज खेती में जिस तरह से वैश्वीकरण नई आर्थिक नीतियां लागू की जा रही हैं, उसके प्रभावी कदमों ने मध्यम और निम्न किसानों को उजरती श्रमिक बनने को मजबूर कर दिया है। दूसरी बात जिसे हम मध्यम और निम्न किसान कहते हैं-उन्हीं में से तो शहरों में जाकर उद्योगों में संगठित-असंगठित मजदूर बने हैं। आज जब निजीकरण और उदारीकरण के चलते शहरों में उद्योग बंद होते जा रहे हैं तो वही मजदूर पुनः गांव लौटकर मध्यम और निम्न किसानों की संख्या बढ़ा रहे हैं। गांवों में किसानों को औपनिवेशिक काल में उसकी लूट और तबाही का कारण सामंतवाद और साम्राज्यवाद को बताया जाता था, राष्ट्रीय पूंजीपति को वर्ग दोस्त समझा जाता था। सन् 1947 के स्वतंत्रता संग्राम में किसान-मजदूर और पूंजीपति (देशी) एक मंच पर थे। वही थी नवजनवादी क्रांति की लाइन। आजादी हासिल होने के बाद इसी राष्ट्रीय पूंजीपति के हाथों में सत्ता आई और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग ने अपने तरीके से जमींदारी का उन्मूलन किया। क्रांतिकारी शक्तियां कमजोर होने के चलते सत्ता अपने हाथों में नहीं ले सकीं। राष्ट्रीय बुर्जुआ को अपने वर्ग हित में सत्ता सुदृढ़ करनी थी सो उसने किया। आज भी वह सत्ता पर प्रतिक्रियावादी ताकत बन कर बैठा है। आज की परिस्थितियों में मजदूर, किसान और मध्य वर्ग ही एक मंच पर होंगे। राष्ट्रीय पूंजीपति साम्राज्यवाद के साथ होने और किसानों, मजदूरों, मध्यम वर्गों का विरोधी होने के नाते वर्ग दुश्मन है। नई समाजवादी क्रांति के लिए गांवों के किसानों को उनके शोषण का स्वरूप और मुख्य दुश्मन को पहचनवाना होगा। शहरों के मजूदर इनकी अगुवाई करेंगे क्योंकि नई समाजवादी क्रांति सर्वहारा क्रांति है। सारे देश में (भारत में) रणनीति एक होगी। रण कौशलात्मक फर्क शहरों और देहातों में हो सकता है। यहां हूबहू न रूस की स्थिति है न चीन की। किसानों को गांवों में और शहरों में मजदूरों को लोक स्वराज्य पंचायत की अवधारणा समझा कर इस विश्व व्यवस्था परस्त पूंजीवादी लुटेरी व्यवस्था के विरोध में नई समाजवादी क्रांति के लिए तैयार करना पड़ेगा ताकि इस लुटेरों सत्ता के स्थान पर मजदूरों, किसानों और मध्यम वर्ग की सत्ता कायम की जा सके। सामूहिक खेती और सामूहिक मालिकाना की स्थापना लोक स्वराज्य पंचायत के माध्यम से ही संभव है। सारी मेहनतकश जनता को यह बतलाना पड़ेगा कि इसके अलावा मुक्ति का फिलहाल कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

साथी पी.आर. हरणे द्वारा दिये गये इस बहस के मुद्दे पर अंत में हमारा यही मानना है कि अन्तरविरोधों को नजरअंदाज करके न कोई रणनीति तैयार की जा सकती है न कोई क्रांति की जा सकती है। कम्युनिस्टों के वैचारिक मतभेद भी अन्तरविरोधों के सही आकलन में ही समाप्त हो पायेंगे। अन्तरविरोधों का गलत आकलन करना या पूरी तरह नजरअंदाज करना कभी भी कम्युनिस्टों को एक मंच पर नहीं आने देगा।

-एक बिगुल पाठक
मधुबन, मऊ

बीमा का निजीकरण और ट्रेड यूनियन की भूमिका : एक बहस

कटघरे में तो है ही ट्रेड-यूनियन नेतृत्व!

बीमा के निजीकरण और ट्रेड यूनियन की भूमिका पर जारी बहस को लगातार पढ़ता रहा हूं। कभी-कभी एक झुंझलाहट-सी भी होती रही है कि कुख्यात बीमा नियमन विधेयक पास होने के बाद कुछ बीमा कर्मचारी अभी भी यूनियन नेतृत्व के प्रति अंधी वफादारी दिखाते हुए पर्दानशीन मेलाघुमनी की उस कहानी को क्यों दुहरा रहे हैं जो घूंघट की ओट से पति के लाल मोजे-जूते का अनुसरण करती हुई किसी और लाल मोजे-जूते वाले के घर जा पहुंची थी।

साथी ललित सती कई बार इस बात को स्पष्ट कर चुके हैं कि उनका मन्तव्य यूनियन का विरोध करना नहीं, बल्कि यूनियन-नेतृत्व की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह उठाना रहा है। बुनियादी सवाल एकदम साफ है। (एक) निजीकरण-उदारीकरण की नीतियां घोषित तौर पर दस वर्षों से जारी थीं और बीमा क्षेत्र को खोलने की नीतिगत घोषणा सरकार बरसों पहले कर चुकी थी। अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वह इस आशय के करार पर पहले ही हस्ताक्षर कर चुकी थी। प्रश्न यह है कि इतने लम्बे अन्तराल में संघर्ष की कोई तैयारी क्यों नहीं की गई? रस्मी विरोध के आसमानी तीर और फुसफुसे पटाखे छोड़ने से कुछ अधिक क्यों नहीं किया गया? बीमा विधेयक तैयार और पेश होने का इन्तजार करते हुए 'दरवाजे लगी बारात तो समधन को लगी हगास' कहावत को क्यों चरितार्थ किया गया? (दो) बीमा विधेयक पेश होने के बाद भी उसका कारगर विरोध नहीं हो सका। और अब उसके पारित होने के बाद भीरस्मी विरोध का कर्मकाण्ड जारी है। यह क्या साबित करता है? (तीन) निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों का कहर रेल, डाक, बैंक और सभी सार्वजनिक उपक्रमों के कर्मचारियों पर बरपा हो रहा है। यह होना है, यह तो दस वर्षों पहले ही साफ हो चुका था। फिर इतने लम्बे अन्तराल में इन सभी सेक्टरों के कामगारों-कर्मचारियों का नई आर्थिक नीति विरोधी कोई संयुक्त मोर्चा क्यों नहीं बना और समय-समय की रस्म अदायगी के बजाय लम्बे, जुझारू आन्दोलन का कोई साझा कार्यक्रम क्यों नहीं तैयार किया गया? फिरनाहक हमारा नेतृत्व गला फाड़-फाड़कर "मजदूर एकता जिन्दाबाद" क्यों चिल्लाता रहता है?

इससे भला किसे इनकार हो सकता है कि अतीत में ए.आई.आई.इ.ए. ने बीमा कर्मियों के आर्थिक हितों के लिए जुझारू संघर्ष किये हैं। पर सच यह है कि उस समय भी वह अर्थवाद नहीं तो जुझारू अर्थवाद कर रहे थे। बीमा कर्मियों के बीच आर्थिक हितों से आगे बढ़कर व्यापक मजदूर कर्मचारी आबादी के साथ एका बनाने या व्यवस्था विरोधी राजनीतिक संघर्ष का भागीदार बनाने की कोई कार्रवाई तो दूर, बात तक नहीं की जाती थी। मुंह से "इंकलाब जिन्दाबाद" और वास्तव में महज "वेतन वृद्धि-मंहगाई भत्ता बोनस जिन्दाबाद" फिर एक दिन यह नौबत तो आनी ही थी। साथी एस.एस. वर्माने सही मुद्दे उठाते हुए भी अपने पत्र में इस पहलू की अनदेखी की है। ग्लोबलाइजेशन/प्राइवेटाइजेशन के विरोध में संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष है जो सीधे-सीधे साम्राज्यवाद-पूंजीवाद की नीतियों के खिलाफ है। इस संघर्ष में प्रभावी भागीदारी की अपेक्षा हम उस नेतृत्व से नहीं कर सकते जिसकी गांठ "बाजार समाजवाद" के पुजारी, संसदीय वाममार्गी सी.पी.एम. से जुड़ी हुई है। बुनियादी नीतियों के सवाल पर हमारा नेतृत्व वस्तुतः सी.पी.एम. के ठप्पा-मोहर का ही काम करता है।

साथी एस.एस. वर्मा की यह बात भी कुछ हजम नहीं हुई कि आरोप का निशाना सिर्फ ए.आई.आई.ई.ए. को ही नहीं बनाया जाना चाहिए। साथी ललित सती ने भी अन्य यूनियनों को कहीं भी 'क्लीन चिट' नहीं दिया है। पर अन्य छुटभैया यूनियनों का आधार और प्रभाव बहुत कम है। दूसरे, वे तो और अधिक घोषित तौर पर इस या उस पूंजीवादी पार्टी की दुकानदारियां हैं। उनसे कोई अपेक्षा भी नहीं थी और उनकी पहल का विशेष नतीजा भी नहीं आना था। प्रमुख प्रतिनिधि यूनियन होने के नाते और दूसरे, वामपंथी भाषा-शैली मजदूर हितों की बात करने के चलते कटघरे में तो ए.आई.आई.ई.ए. नेतृत्व को ही (ध्यान दें, पूरी यूनियन को नहीं, नेतृत्व को) खड़ा किया जाना चाहिए।

यूनियन नेतृत्व बीमा क्षेत्र को खोलते समय विदेशी पूंजी की भागीदारी कम कराने के लिए पीठ ठोक रहा है (वैसे, इसके लिए संघी स्वदेशी जागरण मंच वाले तथा सभी पार्टियां अपनी पीठ ठोंक रही हैं)। पर सच यह है कि देशी निजी पूंजी भी कर्मचारियों के लिए 'सान्ता क्लॉज' नहीं है। दूसरी बात, विदेशी पूंजी की कम भागीदारी आगे बढ़नी तय है। वित्त मंत्री दावा करते हैं कि सरकारी बीमा कम्पनियां कमजोर नहीं होंगी, बल्कि उन्हें और प्रतियोगी बनाया जा रहा है। जबकि अंदर का सच कुछ और है। अभी हाल ही में लखनऊ में जीवनबीमा में कार्यरत मेरे एक रिश्तेदार आये थे। उन्होंने बताया कि आई.आर.ए. बिल लागू होने के बाद लखनऊ में जीवन बीमा निगम के व्यवसाय में 40 प्रतिशत कमी आई है। दूसरे, बिल पास होने के पहले एल.आई.सी. के एक प्रमुख कार्यालय में जहां रोजाना 50-60 नये केस आते थे, वहीं अब सिर्फ 5-6 आते हैं। तीसरे, मैनेजमेन्ट को जान-बूझकर बिजनेस डाउन करने के संकेत मिले हैं, इसलिए पिछले साल भर से नये एजेण्ट नहीं बनाये गये हैं। इन तथ्यों ने उत्सुकता पैदा की कि मैं जयपुर में भी स्थिति का जायजा लूं। अपने ब्रांच से और कुछ अन्य ब्रांचों से तथ्य इकट्ठा करने के बाद मैंने पाया कि यहां भी स्थिति कमोवेश लखनऊ जैसी ही है।

तय है कि सरकारी बीमा क्षेत्र के उजड़ने की शुरूआत हो चुकी है। हारने से ज्यादा अफसोस इस बात का है कि हम जमकर लड़े नहीं।

-एक बीमाकर्मी
जयपुर (राजस्थान)

पंजीकरण संख्या - 71980/99

आंध्र प्रदेश में बिजली मूल्य वृद्धि के खिलाफ शांतिपूर्ण जन प्रदर्शन पर पुलिस की गोलीबारी

"माडल" मुख्यमंत्री श्री नायडू का फासिस्टी तेवर

28 अगस्त को, आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद में, सरकार द्वारा की गई बिजली मूल्य वृद्धि के खिलाफ शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे आम नागरिकों पर पुलिस ने अन्धाधुन्ध गोलियां चलाकर तीन लोगों की हत्या कर दी और सैकड़ों लोगों को गम्भीर रूप से घायल कर दिया। क्रांतिकारी आन्दोलन से जुड़े एक साथी सत्यनारायण को एक साथ सीने में कई गोलियां उतारकर खत्म कर दिया गया। इस प्रदर्शन में वामपंथी पार्टियों-ग्रुपों के अलावा चुनावी पार्टी कांग्रेस के लोग भी शामिल थे। यह नरसंहार हुआ देशी-विदेशी पूंजीपतियों द्वारा बारंबार प्रशंसित मुख्यमंत्री श्री नायडू के राज्य में और उनके इशारे पर। प्रदर्शन में शामिल होने के लिए पूरे राज्य से लोग राजधानी में इकट्ठा हुए थे।

इस प्रदर्शन को कुचलने के लिए नायडू सरकार ने पूरी तैयारी कर रखी थी। राज्य में मौजूद सभी प्रकार के पुलिस बलों जिसमें कुख्यात और हत्यारी एन्टी-नक्सलाइट ग्रेहाउण्ड फोर्स भी थी, जिसको रणनीतिक तरीके से विधान सभा के इर्द-गिर्द तैनात किया गया था। विरोध प्रदर्शन में शामिल सैकड़ों की तादाद में लोग एक जुलूस की शक्ल में विधानसभा की ओर जा रहे थे कि तभी पुलिस ने फायरिंग शुरू कर दी।

प्रदर्शनकारियों पर, तितर-बितर करने के ध्येय से हवा में गोलियां नहीं चलाई गयीं बल्कि उन्हें सबक सिखाने के ध्येय से सीने, सिर और पीठ पर गोलियां मारी गईं। निहत्थी जनता के खिलाफ यह एकतरफा युद्ध लगभग तीन घंटे चलता रहा। पूरा मैदान घायलों से पट गया। तीन घंटे बाद प्रशासन नें गाड़ियों में भरकर कुछ को तो अस्पताल पहुंचाया लेकिन न जाने कितने बीच से ही लापता हो गये। शायद प्रशासन ने हमेशा की तरह उनका भी काम तमाम कर दिया।

क्या भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वेंकटरमण के उस बयान में कुछ सच्चाई है जो उन्होंने अपने पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद कहा था कि "नई आर्थिक नीतियों को एक तानाशाह ही लागू कर सकता है"? यह एक नंगा सच है कि विकास के ठीक इसी मॉडल को लागू करने के प्रयास में मैक्सिको, ब्राजील, थाइलैण्ड, दक्षिण कोरिया जैसे देशों की सरकारें अपनी-अपनी जनता का भयंकर दमन-उत्पीड़न करने के बावजूद जन आन्दोलनों को दबा नहीं पा रही हैं। तो क्या भूमण्डलीकरण के दौर के "मॉडल" मुख्यमंत्री नायडू जनअसंतोष के विस्फोट को दबा पायेंगे?

मुख्यमंत्री बनते ही नायडू आंध्र प्रदेश की पिछड़ी अर्थव्यवस्था को बाजार और मुनाफे के तन्त्र से पूरी तरह जोड़कर आधुनिक बनाने में जुट गये। जन कल्याणकारी मदों में कटौती करके, सरकारी क्षेत्र का निजीकरण करके, पुराने नियमों-प्रतिबन्धों को समाप्त करके देशी-विदेशी पूंजीपतियों की वाहवाही लूटने में वे जुटे रहे हैं। कृषि क्षेत्र को पूरी तरह बाजार से जोड़ने के लिए बड़े पैमाने पर लोन दिये गये और किसानों को प्रेरित किया गया कि वें बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से बीज और कीटनाशक खरीदकर कैश क्राप पैदा करें। बिजली क्षेत्र को भी इसी तरह मुनाफे और लूट के तन्त्र से जोड़ दिया गया। विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने विश्व पूंजीवाद को अपना एक ऐसा वैश्विक तन्त्र बनाने के लिए विवश किया जिससे हर स्तर की अर्थव्यवस्थाएं आपस में जुड़ जाएं ताकि आर्थिक संकट के बोझ को दुनिया के पिछड़े देशों पर डाला जा सके। नई व्यवस्था के लागू होने के कुछ समय बाद कर्ज के मकड़जाल में फंसे यहां के किसान विकल्पहीनता की स्थिति में आत्महत्या कर रहे हैं। यह वही प्रदेश है जहां के सैकड़ों गरीब किसान अपना गुर्दा बेचने को अभिशप्त हो गये।

ठीक इसी समय नायडू देशी-विदेशी पूंजीपतियों के इशारे पर बिजली मूल्य में वृद्धि की घोषणा करते हैं वह भी मामूली वृद्धि नहीं, बल्कि आम उपभोक्ताओं के लिये चार रुपये प्रति यूनिट की वह दर जिसकी न्यूनतम अपेक्षा विश्व बैंक आई.एम.एफ. ने की थी। इससे न सिर्फ आम उपभोक्ता की बदहाली बढ़ेगी बल्कि सभी छोटे उद्योग और मध्यम किसान तबाह हो जायेंगे।

तबाही-बर्बादी की इसी जमीन पर पल रहा है असंतोष और विद्रोह का बीज। इससे पहले कि बीज अंकुरित हो, तानाशाह नायडू उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते हैं। नई आर्थिक नीतियों की मार से तबाह जनता अपने-अपने तरीके से विरोध का स्वर ऊंचा कर रही है और हर जगह निरंकुश सत्ता उसका लाठियों-गोलियों से दमन करने की कोशिश कर रही है। निहत्थी जनता पर गोलीबारी आज एक आम नियम बन चुका है। नई आर्थिक नीतियों के खुले और छुपे समर्थक तमाम चुनावी वामपंथी और पूंजीवादी पार्टियां अपने वोट बैंक की खातिर एक हद तक प्रदर्शन-विरोध की रस्मी कवायद तो करते हैं लेकिन उसे जन आंदोलन नहीं बनने देना चाहते हैं। वे जानते हैं कि एक चिंगारी पूरे जंगल में आग लगा सकती है। आंध्र में भी इन्होंने ऐसा ही किया। इस गोलीकाण्ड के बाद सभी चुनाावी शेर, जो इस प्रदर्शन में भी शामिल थे, अपने-अपने मांदों में जा दुबके। संसद तक में भी कोई विशेष शोर नहीं हुआ।

इस मरणासन्न पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा अब आम जन की हर मांग का गला घोंट देना खुद उसके अस्तित्व की शर्त बन चुका है। और आम मेहनतकश अवाम के पास भी लड़ने के अलावा कोई रास्ता शेष नहीं रह गया है। आखिर कब तक हम आमने-सामने के युद्ध से कतराते रहेंगे? आज पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों से बिना युद्ध किये एक धेला भी पाना संभव नहीं। तो फिर क्यों नहीं एक सच्चे क्रान्तिकारी संघर्ष की तैयारी में जुटा जाय।

– ओम प्रकाश

योजना आयोग के एक सदस्य ने माना कि पूंजीपतियों की चोरी से देश में बिजली संकट

लखनऊ (कार्यालय प्रतिनिधि)। कभी-कभी सरकारी नौकरशाह भी सच बोलते हैं। ऐसा ही एक सच पिछले दिनों **योजना आयोग के सदस्य** और भूतपूर्व वित्त सचिव **मोंटैक सिंह अहलूवालिया** ने बोला है। श्री अहलूवालिया ने स्वीकार किया है कि देश में बिजली का संकट गरीबों और किसानों द्वारा कटिया मारकर बल्ब जलाने से नही पैदा हुआ है। इसके लिए उद्योगपति जिम्मेदार हैं।

एक प्रमुख अंग्रेजी राष्ट्रीय दैनिक को जुलाई महीने में दिये गये एक साक्षात्कार में श्री अहलूवालिया ने आश्चर्यजनक रूप से सच बोलते हुए कहा कि, **"चोरी के लिए ज्यादा जिम्मेदार वे लोग हैं जो औद्योगिक इकाइयां चलाते हैं और जो अच्छे-खासे खाते-पीते उपभोक्ता हैं, जिनके घरों में एयर कण्डीशण्ड लगे हुए हैं और जो लाइनमैनों से सांठगांठ कर बिजली बिलों में घपलेबाजी करते हैं।"** श्री अहलूवालिया ने साफ तौर पर कहा कि राज्य विद्युत बोर्डों के घाटे का कारण उद्योगों और पैसे वाले उपभोक्ताओं की चोरी है। उनका मानना है कि विद्युत उत्पादन के क्षेत्र में कोई संकट नहीं है, असली संकट पारेषण (ट्रांसमिशन) और वितरण का है।

हालांकि, इस संकट के समाधान की चर्चा करने पर श्री अहलूवालिया निजीकरण का फार्मूला ही सुझाते हैं। पूंजीवादी तंत्र में एक ऊंचे ओहदे पर बैठे हुए नौकरशाह से यह उम्मीद ही नहीं की जा सकती कि वह बाजार और मुनाफे के समूचे तंत्र को उलटने की बात करे। व्यवस्था की सीमाओं में रहते हुए श्री अहलूवालिया को इससे अधिक कुछ सूझ भी नहीं सकता। लेकिन, बहरहाल एक ऐसे सच को कबूलने और कहने का साहस उन्होंने किया, जिसपर खासतौर पर पर्दा डाला जाता है। कम से कम इसके लिए तो उन्हें बधाई दी ही जानी चाहिए। शायद भविष्य में कुछ और सच उगल सकें।

साम्राज्यवादी महाप्रभु के दरबार में "स्वदेशी" साष्टांग दण्डवत

(पेज 1 से जारी)

वर्ष में ही पेट्रोलियम, उड्डयन, संचार और होटल उद्योग के शेयर निजी हाथों में बेचने वाली है।

प्रधानमंत्री ने अमेरिकी निवेश के लिए दो लुभावने प्रस्ताव और पेश किये। **पहला, उन्होंने सेल्यूलर फोन सेवा पूरी तरह से लाइसेंस मुक्त कर देने का इरादा जाहिर किया। दूसरा, प्रधानमंत्री कार्यालय में एक रणनीति-प्रबंधन दल बनाने की घोषणा की जो बड़ी परियोजनाओं के सन्दर्भ में विदेशी निवेशकों के सामने आने वाली दिक्कतों को फटाफट दूर कर देगा।**

इन लुभावने प्रस्तावों और आरजू-मिन्नत के नतीजे के तौर पर कल 15 सितम्बर तक दोनों देशों के बीच आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देने के लिए कुल छः अरब डालर मूल्य के समझौतों पर हस्ताक्षर हो चुके थे। **अटलांटा** की कम्पनी **'सदर्न इनर्जी इंक.'** ने ओडीशा में **हिरमा बिजली परियोजना** के लिये भारतीय कम्पनियों – **रिलायंस पावर लि.** और **पावर ट्रेडिंग कार्पोरेशन** के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। गौरतलब है कि यह दुनिया की सबसे बड़ी स्वतंत्र बिजली परियोजना होगी। इससे उत्पादित बिजली पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, गुजरात और राजस्थान को बेची जायेगी। इसके अतिरिक्त तमिलनाडु की बिजली परियोजनाओं के लिए **डीयरबार्न** स्थित **सी.एम.एस. इनर्जी कार्पोरेशन** और **पावर ट्रेडिंग कार्पोरेशन आफ इण्डिया** के बीच तथा उत्तरप्रदेश की श्रीनगर पनबिजली परियोजना के लिए **अन्नापोलिश** स्थित **सिनर्जिक्स इनर्जी डेवलपमेंट इंक.** और भारत के **इन्फ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फाइनेंस कार्पोरेशन** के बीच समझौते हुये। सूचना तकनोलॉजी के क्षेत्र में, **सेनफ्रांसिको** की एक कम्पनी के साथ **सत्यम इन्फोवे लि.** का भी एक समझौता हुआ। अमेरिकी उत्पाद और सेवाओं की खरीद के लिये भारतीय कम्पनियों को 90 करोड़ डालर उपलब्ध कराने के लिये एक करार **अमेरिकी एक्जिम बैंक** के साथ भी हुआ। एक अन्य समझौता शहरी विकास और ऊर्जा क्षेत्र में प्रशिक्षण के लिये **अमेरिकी अन्तरराष्ट्रीय विकास एजेंसी** के साथ हुआ।

अपनी पूरी अमेरिका यात्रा के दौरान भारतीय प्रधानमंत्री और उनके दल के सदस्यों ने अमेरिकी सरकार और कम्पनियों को हर तरह से, और बार-बार, यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि विदेशी पूंजीनिवेश के रास्ते की हर बाधा को दूर किया जायेगा और "दूसरे चरण के सुधारों" को हर कीमत पर जारी रखा जायेगा। पेट्रोलियम, दूरसंचार, सूचना-प्रद्योगिकी, विमानन, पर्यटन आदि के क्षेत्र में उदारीकरण के लिये उठाये गये कदमों का ब्यौरा देने के साथ ही वाजपेयी ने अमेरिकी निवेशकों को यह भी बताया कि ऊर्जा क्षेत्र के विनियमन के लिये विधेयक तैयार हो चुका है। इससे निजी क्षेत्र को बिजली के उत्पादन, वितरण और संप्रेषण के लिये फैसले लेने की पूरी छूट मिल जायेगी।

❑

प्रधानमंत्री वाजपेयी की इस अमेरिका यात्रा ने भाजपा के "स्वदेशी" के नारे की कलई एक बार फिर एकदम खोलकर रख दी है और यह एकदम साफ कर दिया है कि यह सरकार हर हाल में, हर कीमत पर, जल्दी से जल्दी उदारीकरण मुहिम को उसके आखिरी मुकाम तक पहुंचा देना चाहती है।

वाजपेयी सरकार ने अबसे एक वर्ष पहले, सत्तारूढ़ होते ही अपने इरादों को साफ जाहिर कर दिया था। प्रधानमंत्री और वित्तमंत्री तबसे यह बार-बार दुहराते रहे हैं कि आर्थिक सुधारों के लिए वे कड़े से कड़े फैसले लेने से बाज नहीं आयेंगे। एक वर्ष पहले अक्टूबर' 99 में 'बिगुल' के सम्पादकीय अग्रलेख में हमने लिखा था : **"सत्तासीन होते ही वाजपेयी सरकार ने एक नया और जबरदस्त युद्ध छेड़ दिया है। यह युद्ध सीमा पर नहीं बल्कि देश के भीतर लड़ा जा रहा है।... इस "युद्ध" में सरकार का निशाना सीधे जनता के पेट पर है, उसके रोजी-रोटी के अधिकार पर, यहां तक कि सीधे उसके जीने के अधिकार तक पर है। यह आर्थिक युद्ध है जो व्यापक मेहनतकश आबादी और नौकरीपेशा आम मध्यवर्ग के खिलाफ उदारीकरण-निजीकरण के "दूसरे दौर" के नाम से छेड़ा गया है और देखते ही देखते धुंआधार रूप ले चुका है।"**

एक वर्ष बाद, आज हम उसी "युद्ध" के बीच खड़े हैं जब प्रधानमंत्री देशी बड़े पूंजीपतियों को एकदम आश्वस्त करने के बाद, उनके प्रतिनिधि के तौर पर साम्राज्यवादियों को यह आश्वासन दे रहा है कि उदारीकरण के राह की हर बाधा दूर कर दी जायेगी

भारतीय पूंजीपति आज विदेशी पूंजी और तकनोलॉजी के सहकार के लिये आतुर हैं और यह उनकी मजबूरी भी है कि वे, सम्राज्यवादियों की कठिन शर्तो को मानकर भी, ऐसा ही करें। पर उनकी समस्या यह है कि साम्राज्यवादी अपनी पूंजी उन देशों में लगाने को प्राथमिकता देते हैं जहां राजनीतिक-सामाजिक स्थिरता हो, पूंजी पर मुनाफे की असाधसरण दरों की गारण्टी हो तथा अपनी पूंजी कभी भी वापस ले जाने की सुविधा हो। भारत में राजनीतिक अस्थिरता और सामाजिक तनाव तथा व्यापक गरीब आबादी के जनान्दोलनों के भड़क उठने के खतरे तो है ही, विदेशी निवेशक इसके मुकाबले चीन जैसे देश को पूंजी-निवेश के लिये अधिक अनुकूल पाते हैं। यही वजह है कि भारत में गत दस वर्षों में मात्र 15 अरब डालर का अमेरिकी निवेश ही स्वीकृत हुआ है और यह भी सिर्फ कागज पर है। वास्तव में हुआ निवेश तो बहुत ही कम है। अब वाजपेयी सरकार साम्राज्यवादियों को यह आश्वस्त करने की कोशिश कर रही है कि उदारीकरण-निजीकरणके विरूद्ध संभावित हर जन-उभार को हर कीमत पर कुचल देने के लिये वह तैयार है, अतः वे पूंजी-निवेश करने में जरा भी न हिचकिचायें।

उदारीकरण-निजीकरण कुचक्र के पहले दौर के दस वर्षों के विनाशकारी नतीजे 100 अरब डालर के विदेशी कर्ज, 48 अरब रूपये के देशी कर्ज, 25 करोड़ से अधिक की बेरोजगारी, लाखों छोटे-मझोले उद्योगों की तबाही, लगातार बढ़ती मंहगाई तथा स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा के निजीकरण एवं आम लोगों की पहुंच से बाहर होते जाने आदि के रूप में हमारे सामने है। अब आर्थिक सुधारों का "दूसरा दौर" जो कहर बरपा करने वाला है, उसके बारे में अनुमान लगाने की जरूरत नहीं है क्योंकि सत्ता-धाारियों ने खुद ही इसके संकेत दे दिये हैं।

हालात ने साफ कर दिया है कि पूंजी और श्रम की शक्तियां अब एक बार फिर आमने-सामने खड़ी हों रहीं हैं और इस बार वे निर्णायक संघर्ष के लिये सन्नद्ध हो रही हैं। मुनाफे की अन्तहीन हवस में पगलाये साम्राज्यवादियों और पूंजीपतियों के सामने जो एकमात्र परियोजना है, वे उसे लागू कर रहे हैं। अब मेहनतकश जनता के सामने भी समाजवादी परियोजना को पुनर्जीवित करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। "या तो समाजवाद या फिर बर्बरता – मानवता के सामने ये दो ही विकल्प हैं" – यह बात आज के लिये सबसे अधिक सटीक है।

(16 सितम्बर, 2000)

स्वत्वाधिकारी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : **कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।**
संपादक : डा. दूधनाथ। सम्पादकीय पता : **द्वारा ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226 006**, सम्पादकीय उपकार्यालय : **जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।**